सीता-राम

अर्थात्

जनक-दुहिता सीता जी के पवित्र चरित्र का
हिन्दी भाषा में स्त्रियों के उपकारार्थ
उपदेशप्रद एक संग्रह।

"अन्योऽन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्म्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥"
—मनु अं० ९, श्लो० १०१.

Fidelity till death, this is the sum,
Of mutual duties for a married pair.
—Ibid.

संग्रहकर्त्ता

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।

प्रकाशक

रामदयाल अगरवाला

कटरा—प्रयाग।

सन् १९१३

प्रथम संस्करण] [मूल्य I0as

ALLAHABAD:

Printed by Mool Chand at the Shivaram Aushadhalaya Press.

भूमिका।

स्त्री शिक्षा-पुस्तकमाला की प्रथम पुस्तक "आदर्श-महिलाओं" की भूमिका में हमने सूचना दी थी कि श्रीमती जनक-दुहिता सीता की जीवनी एक स्वतंत्र पुस्तक में प्रकाश की जायगी। आज ईश्वर को अनेक धन्यवाद हैं कि जिनकी अनुकम्पा से उस पूर्व सूचना के अनुसार हमें जनक-दुहिता सीता की यह जीवनी प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इस देश में किसी किसी की ऐसी धारणा है कि वे अपनी दुहिताओं का नाम सीता इस लिये रखना नहीं चाहते कि "सीता" नाम रखने से कन्या दुर्भाग्यवती हो जायगी। जनक जैसे प्रतापशाली पिता, दशरथ जैसे विश्वविख्यात सत्यसन्ध ससुर, कौशल्या जैसी वीरप्रसविनी सास, लक्ष्मण जैसे भ्रातृ-भक्त देवर के होते हुए भी, सीता का जन्म सदा रोते और दुःख भोगते ही बीता। इसीसे लोग सीता को अति दुर्भाग्य-वती समझते हैं।

किन्तु सीता क्या सचमुच दुर्भाग्यवती थी? असाधारण पतिभक्ति, सुशीलता, शान्तस्वभाव, क्षमा, सहिष्णुता आदि गुणों में जो रमणी आज भारतवर्ष ही में नहीं—किन्तु समस्त संसार में आदर्श मानी जाकर पूजी जा रही है, वही स्त्री दुर्भाग्यवती? सच बात तो यह है कि महत् चरित्रों का महत्व दुःखों में पड़ने ही से प्रकट होता है। सुवर्ण की कान्ति तपाने ही से निकलती है। सीता यदि निष्कण्टक राज्य

पा कर श्रीरामचन्द्र के साथ आनन्द से दिन व्यतीत करती तो आज सीता का नाम कौन जानता? आज कौन सीता का जयजयकार मनाता? आज कौन सीता को देवी कह कर उनकी पूजा करता? अवश्य ही सीता का जन्म दुःख ही में कटा। किन्तु दुःख में पड़ सीता ने जो देव-दुर्लभ धीरता, सहिष्णुता और महत्व दिखलाया, उसीसे सीता आज सीता है। स्वामी के साथ वन के अनेक कष्ट सहती हुई सीता के मुख पर कभी विषाद के चिन्ह तक नहीं दिखलायी देते, यह कैसी अलौकिक सहिष्णुता है। रावण के मारे जाने पर उसकी रखी हुई राक्षसिओं के सारे अत्याचारों को भूल जाना और स्नेह में भर उनके सब अपराधों को क्षमा कर देना—कैसी अपूर्व क्षमा है! विना दोष निर्वासिता होने पर भी, स्वप्न में भी कभी राम की निन्दा न करना अथवा उन पर दोष प्रकट न करना-प्रत्युत उनके दुःख में दुःखिनी होना कैसा अभूत-पूर्व महत्व है! यदि ऐसी सीता भी दुर्भाग्यवती समझी जाँय, तो इस संसार में फिर सौभाग्यवती कहाँ मिल सकती हैं? सीता के समान कन्या का किसी वंश में जन्मना, किसी बड़े भारी पूर्वजन्म के सुकृत का फल समझना चाहिये। सीता के समान वधू जिस कुल को कृतार्थ करे, उस कुल को गौर-वान्वित समझना चाहिये।

ऐसी सौभायग्वती सीता के पवित्र चरित्र को लिख कर और पढ़ कर कौन अपने को कृतकृत्य करना न चाहेगा? इसी धारणा के वशवर्त्ती हो कर, हमने इस कार्य के लिये अपने को अयोग्य पा कर भी, इस दिव्य चरित्र को लिखा है। दुर्भाग्यवशतः पक्षी योनि को प्राप्त हुआ पक्षी, जब "सीता-राम" के नाम को उच्चारण कर भगवद्भक्तों का कृपापात्र बन

जाता है, तब टूटी फूटी भाषा में सीता चरित्र को लिख कर, क्षुद्रातिक्षुद्र लेखक भी भगवद्भक्तों की अमूल्य कृपा का पात्र होगा—इसमें सन्देह ही क्या है।

यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि यह पुस्तक हमारे मस्तिष्क से नहीं निकली; किन्तु हमने श्रीयुत् बाबू अविनाशचन्द्र दास की बङ्गला पुस्तक "सीता" के आधार पर इसे सङ्कलित किया है। भगवान् वाल्मीकि ने अपनी रामायण में अन्य चरित्रों को अङ्कित करते समय प्रकृति के नियमों का पालन किया है; किन्तु सीता जी के जन्म और मानवी लीला सम्बरण का चित्र अङ्कित करते समय, उनको प्रकृति के नियमों को भूल जाना पड़ा है, इस भाव को हमने भी अपने स्मृतिपथ से वहिष्कृत नहीं किया। अनेक लोगों को इससे सन्देह उत्पन्न हो सकता है और इसमें कवि-कल्पना की गन्ध आ सकती है, किन्तु हमारे विचार में भगवद् लीला के सामने प्रकृति तुच्छातितुच्छ है। अतः हमने सीता के चरित्र को उसी ढङ्ग से अङ्कित किया है जैसा कि आदिकवि वाल्मीकि कर गये हैं। ऐसा करते हुए अविनाश बाबू के शब्दों में जहाँ पर इस पुस्तक में पाठक पठिकाओं को उत्कृष्ट रचना जान पड़े, उसे वे महर्षि वाल्मीकि की कृपा का फल समझें और जहाँ उन्हें कोई त्रुटि जान पड़े, वहाँ लेखक की अयोग्यता और भूल समझ कर, सीता के दिव्य चरित्र पर किसी प्रकार की शङ्का न करें, हमारी यही विनीत प्रर्थना है।

प्रयागः
वैशाख शुक्ला १५,
सं० १९६९ — चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।

श्रीहरिःशरणम् ।

जनक-दुहिता सीता ।

प्रथम अध्याय ।

बिहार के उत्तर-पूर्व कोण में और गङ्गा से उत्तर वाले जिस प्रदेश को लोग अब तिरहुत कहते हैं; वह प्राचीन काल में मिथिला के नाम से प्रसिद्ध था। इसी मिथिला देश में किसी समय एक सुविख्यात राजवंश राज्य करता था। उस राजवंश के आदि प्रतिष्ठाता महाराज निमि थे। निमि के पुत्र का। नाम मिथि और मिथि के पुत्र का नाम जनक था। इन्हींके नाम पर उस राजवंश का नाम वंशपरम्परा से "जनक" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाराज जनक, अयोध्या-पति महाराज दशरथ के सम-कालीन अधिपति हैं अर्थात् अयोध्या के राज-सिंहासन पर

जिस समय महाराज दशरथ आसीन थे, उस समय मिथिला राज्य का शासन महाराज जनक करते थे। महाराज जनक परमधार्मिक और संयमी थे। महाराज जनक केवल मिथिला राज्य के महीपति ही नहीं थे; किन्तु उन्होंने अभ्यास द्वारा अनेक शास्त्रों के तत्वों का ज्ञानरूपवगत कर लिया था और वे ज्ञानराज्य के भी अधिपति थे। उनकी ज्ञान सम्बन्धी योग्यता को देख, उस समय के ऋषियों ने उन्हें राजर्षि की उपाधि से विभूषित किया था। सचमुच धर्मराज्य में महाराज जनक इतने मान्य समझे जाते थे कि उनके क्षत्रिय होने पर भी अनेक ब्राह्मण तत्वज्ञान लाभ करने के लिये निस्सङ्कोच हो, उनसे पढ़ा करते थे। संसार का यथार्थ रूप जान लेने पर भी महाराज जनक अपनी प्रजा का पालन बड़ी योग्यता से करते थे। इसी से लौकिक और पारलौकिक विचार-विशिष्ट जनों की दृष्टि में जनक बड़ी आदर की वस्तु समझे जाते थे। दूर दूर के ऋषि मुनि सदा उनकी राजसभा में बने रहते थे और महाराज के साथ धर्म सम्बन्धी वार्त्तालाप कर, परम प्रसन्न हुआ करते थे।

जिन असामान्य जगतपूज्य नारी-कुल-भूषण का चरित हम लिख रहे हैं; वे नारीरत्न सीता इन्हीं महानुभाव राजर्षि जनक की दुहिता थीं। श्रीमती के जन्म की जो कथा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में लिखी है, वह अलौकिक है। कहते हैं एक दिन जनक यज्ञभूमि को हलद्वारा परिष्कृत कर रहे थे कि इतने में पृथ्वी से सीता जी का जन्म हुआ। उन्हें देख महाराज जनक बड़े विस्मित हुए। अनन्तर उन्होंने उस हाल की जन्मी कन्या को गोदी में उठा लिया और अपनी निज कन्या की तरह वे उसका लालन पालन करने लगे। खेत जोतते

समय हल की नोक से पृथिवी खोदने पर सीता जी निकली थीं, इस लिये जनक महाराज ने उनका नाम "सीता[1]" रक्खा।

जैसे दिनों दिन चन्द्रमा की कला बढ़ती है, वैसे ही सीता जी भी बड़ी होने लगीं। सीता, महाराज जनक को अपने पिता और राजमहिषी को अपनी माता जानती थीं। वे दोनों भी उनको अपनी निज कन्या की तरह पालते पोसते थे। बालिका सीता का स्वभाव ऐसा अच्छा था, कि उन्हें देख लोगों को ऐसा जान पड़ता था कि स्वर्ग से महाराज जनक के घर में अमृत की एक बून्द टपक पड़ी है। राजर्षि की राजसभा में जितने तपोधन ऋषि थे, वे सब सीता की सौन्दर्य प्रभा और पवित्रता को देख, उनके विषय में अनेक प्रकार की बातें कहा करते थे। सरल स्वभाव वाली सीता उन ऋषियों के मुख से उनके आश्रम आदि का वर्णन सुन बड़ा कौतूहल प्रकाश करती थीं और पवित्र स्वभाव वाली ऋषि कन्याओं के साथ रहने की उनकी बड़ी इच्छा थी। यह देख कर ऋषि कहा करते थे कि यह कन्या आगे बड़ी होने पर, अपने स्वामी के साथ वन में अवश्य विचरण करेगी।

राजर्षि जनक लोगों के मुख से प्राणसमा दुहिता की प्रशंसा और ऋषियों से उसके शुभलक्षणादि का हाल सुन, मन ही मन बहुत प्रसन्न होते थे। धीरे धीरे सीता विवाहने योग्य हुईं। तब राजर्षि जनक को उनके विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई। लड़की के लिये उपयुक्त वर खोजना सहज काम नहीं है। इस काम के करने में क्या राजा, क्या धनी और क्या निर्धन सभी को समान भाव से चिन्तित होना पड़ता

---

१ हल की नोक को संस्कृत में सीता कहते हैं।

है। कन्या जैसे दान के लिये, सभी दाता उपयुक्त वर को खोजते हैं।

पुराने समय में भारतवर्षीय राजाओं को खोजने पर भी जब कन्या के योग्य वर नहीं मिलता था, तब उनमें से कोई कोई वर खोजने का कार्य स्वयं कन्या को सौंपते थे और कोई कोई वर के बल पराक्रम की परीक्षा लेते थे और जो उस परीक्षा में उत्तीर्ण होता था; उसे अपनी कन्या देते थे। उस समय शारीरिक बल वीर्य का बड़ा आदर था। यहाँ तक कि उस समय की स्त्रियाँ भी बल-वीर्य्य-हीन कायर पुरुषों से घृणा करती थीं। कन्या पाने की आशा से और बल पराक्रम दिखला कर यशस्वी होने की लालसा से, ऐसी परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये बड़ी बड़ी दूर के राजा और राजकुमार एकत्र हुआ करते थे। अन्त में जो सब से बढ़ कर अपने बल पराक्रम का परिचय देता, उसे उपहार स्वरूप दुर्लभ कन्यारत्न मिलता था। जब महाराज जनक को खोजने पर भी सीता के योग्य कोई वर न मिला, तब उन्होंने वर की परीक्षा ले कर, कन्या-दान करना निश्चित किया।

एक समय की बात है। महादेव जी ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के लिये एक बड़ा धनुष हाथ में लेकर और क्रोध में भर कर देवताओं से कहा था—"सुरगण! हम यज्ञ भाग लेना चाहते हैं, किन्तु तुम लोग बीच में भाञ्जी मारते हो। अतएव हम इसी धनुष द्वारा तुम्हारा अभी विनाश करते हैं।" महादेव जी के क्रोध भरे वाक्य सुन देवगण स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे। तब महादेव जी ने प्रसन्न हो कर वह धनुष देवताओं को दे दिया। महादेव जी के उस धनुष को देवताओं ने लाकर जनक के पूर्वपुरुष निमि के पुत्र, देवरात

के पास धरोहर की तरह रखा। राजर्षि जनक को इस समय उस धनुष की याद आई और उन्होंने यह संकल्प किया कि जो वीर इस धनुष पर रोदा चढ़ा देगा उसीके साथ हम सीता का विवाह कर देंगे।

थोड़े ही दिनों में सीताजी के अलौकिक गुण और रूप की चर्चा और जनक के प्रण की बात चारों ओर फैल गयी। बड़ी बड़ी दूर के राजा और राजकुमार जनकपुर में गये और उन लोगों ने उस धनुष पर रोदा चढ़ाने की चेष्टा की, किन्तु सब को विफल मनोरथ होना पड़ा। रोदा चढ़ाना तो जहाँ तहाँ, वे लोग उस धनुष को उठा भी न सके। अतएव जनक को उन लोगों को रीते हाथों लौटाना पड़ा। इस घटना के कुछ दिनों बाद सुधन्वा नामक राजा ने महाराज जनक से हर के धनुष और सीता को दूत भेज कर मँगवाया। जनक ने देना अस्वीकार किया। इस पर दोनों राजाओं में लड़ाई हुई। फल यह हुआ कि सुधन्वा मारा गया। उसके मारे जाने पर जनक ने उसके राज्य को छीन कर, अपने छोटे भाई कुशध्वज को सौंप दिया।

उस समय जो वीर राजा थे, वे जनक के इस कठिन प्रण की सूचना पाकर बहुत क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने क्रुद्ध हो कर जनक से इसका बदला लेने का प्रण किया। कुछ दिनों बाद उन लोगों ने मिल कर, सीता को लेने के लिये जनक की राजधानी पर आक्रमण किया। महाराज जनक उन सब से बल में हेटे न थे, इससे दोनों दल वालों में घोर युद्ध हुआ। यह लड़ाई लगभग एक वर्ष तक हुई। अन्त में जनक ने उन राजाओं को हराया। जनक ने उनको हरा तो दिया; पर अब उनको इस बात की बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि हमारा प्रण कैसे रहे।

कुछ काल बीतने पर महाराज जनक ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञ में उन्होंने अनेक और दूर दूर के ऋषि, तपस्वी, विद्वान् पण्डितों को निमंत्रण दे कर बुलाया। यथासमय सब लोग उपस्थित हुए। यज्ञभूमि की अपूर्व शोभा का कहना ही क्या था? ऋषियों की पर्ण-कुटियों की लम्बी लम्बी पंक्तियों से वह स्थान एक गाँव सा जान पड़ने लगा। उनके दर्शन के लिये दूर दूर से लोग वहाँ गये और उनकी भीड़ से उस स्थान में तिल रखने तक को स्थान न रह गया। धर्मात्मा राजर्षि यज्ञ के कार्य में और अभ्यागतों के आगत स्वागत में लगे हुए थे कि इतने में उन्होंने सुना कि यज्ञभूमि में अन्य ऋषियों के साथ महर्षि विश्वामित्र जी पधारे हैं। सुनते ही पुरोहितों समेत महर्षि के पूजन की सामग्री ले, जनक उनके पास गये और यथाविधि उनका सत्कार किया। फिर उनके आगमन से अपने को कृतार्थ मान कर, वे उनके आगमन पर हर्ष प्रकाश करने लगे। महर्षि विश्वामित्र ने महाराज से कुशल प्रश्न पूँछी और वे महाराज के दिये हुए आसन पर सुख पूर्वक, अपने साथियों समेत बैठ गये।

राजर्षि जनक ने देखा कि विश्वामित्र के साथियों में दो युवक हैं। जिनकी पीठों पर तरकस बंधे हुए हैं और वे हाथ में धनुष लिये हुए हैं। महर्षि के साथ अस्त्रशस्त्र-धारी युवकों को देख, महाराज जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके शरीर की गढ़न, उनकी चालढाल और उनका अनूप रूप देख कर, वे दोनों देवकुमार जैसे जान पड़ते थे। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र से सारा आकाश देदीप्यमान हो जाता है, वैसे ही उन दोनों कुमारों की उपस्थिति से महाराज जनक का वह यज्ञस्थल देदीप्यमान हो गया। उन दोनों का एक सा रूप देख, जनक ने नम्रता पूर्वक विश्वामित्र से पूछा :—

जनक—तपोधन ! आप के साथियों में ये जो दो कुमार हैं—ये दोनों किनके पुत्र हैं? ये दोनों इस दुर्गम पथ पर पैदल क्यों आये हैं ? कृपा कर आप इन दोनों का भली भाँति परिचय दीजिये। मुझे इनका परिचय पाने की बड़ी उत्कण्ठा है।

यह सुन महर्षि विश्वामित्र सुमधुर शब्दों में उन दोनों युवकों का परिचय देने लगे। उन दोनों का परिचय पाकर महाराज जनक के आनन्द की सीमा न रही।

दूसरा अध्याय।

विश्वामित्र बोले:—"राजन्! ये दोनों कुमार अयोध्यापति महात्मा दशरथ के पुत्र हैं। आपने सुना होगा कि वृद्धावस्था में अनुष्ठान करने पर दशरथ को चार पुत्रों के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी पटरानी कौशल्या के गर्भ से दूर्वादल-श्याम-कमल-लोचन श्रीरामचन्द्र, कैकेयी के गर्भ से सुशील भरत और सुमित्रा के गर्भ से यमज और तुल्यरूप लक्ष्मण और शत्रुघ्न जन्मे हैं। चारों राजकुमार प्रियदर्शन, मधुरभाषी, शास्त्रज्ञ, और धनुर्विद्या-विशारद हैं। चारों भाइयों का परस्पर सौभ्रातृ अतुलनीय है। किन्तु तिस पर भी लक्ष्मण को श्रीराम के साथ और शत्रुघ्न को भरत के साथ रहना भला लगता है। कुछ दिन हुए मैंने एक यज्ञ करना आरम्भ किया था। किन्तु मारीचादि दुर्दान्त राक्षस लोग आकर विघ्न करने लगे। उनके विघ्नों को रोकने के लिये मैंने दशरथ से उनके सिंह जैसे पराक्रमशाली पुत्र श्रीरामचन्द्र को माँगा। श्रीरामचन्द्र अभी केवल सोलह वर्ष के हैं। इनको राक्षसों के साथ युद्ध करने में असमर्थ जान, दशरथ के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। इससे पहले तो वृद्ध महाराज दशरथ ने मेरी बात नहीं मानी, किन्तु पूर्व में वे प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे, इससे

अन्त में उन्हें मेरी बात माननी पड़ी। उन्होंने लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी को मुझे सौंपा। इन्हें ले मैं अपने आश्रम की ओर चला। इनको मार्ग में श्रम न हो, भूख प्यास से ये दोनों विकल न हो इससे मैंने इन दोनों को सरयू के तट पर बला और अतिबला नाम की दो विद्याएं सिखा दीं। उनके प्रभाव से ये दोनों भूख प्यास को जीत कर, सुख से वन में विचरण करने लगे।

पवित्र सलिला जान्हवी को पार कर, हम तीनों एक ऐसे बियावान वन में पहुँचे जहाँ मनुष्य का चिन्ह तक न था। उस वन में चारों ओर झिल्ली की झनकार का भयानक शब्द सुनाई पड़ता था और उसमें अनेक बनैले और हिंस्र जन्तु भरे पड़े थे। मारे डर के हाथी, सिंह, शूकर आदि विकल हो इधर उधर दौड़ रहे थे। इसका कारण यह था कि उस वन में ताड़िका नाम की बड़ी डरावनी सूरत वाली एक राक्षसी रहती थी। उसकी देह में हज़ार हाथियों जितना बल था। अगस्त्य के शाप से उसने दारुण राक्षस रूप धारण कर, सब से पहले उन्हींके मनोरम आश्रम को उजाड़ा था। उसके डर के मारे लोगों ने उस वन में आना जाना बन्द कर दिया था और उसके उत्पातों से प्राणीमात्र विकल थे। मैंने उसके उत्पातों का विस्तार सहित वर्णन कर, उसे मारने के लिये श्रीराम को प्रोत्साहित किया। लोगों के हितार्थ उसका नाश करने के लिये श्रीरामचन्द्र जी अपने धनुष की टङ्कार से वन को कपाने लगे। उस टङ्कार को सुन, वह राक्षसी हम लोगों की ओर झपटी। दोनों में घोर युद्ध हुआ। अन्त में श्रीरामचन्द्र ने एक बड़े पैने बाण से उस राक्षसी की छाती को फोड़ दिया और वह मर गयी। राक्षसी के मारे जाने पर, मैंने प्रसन्न होकर

श्रीराम को कई एक दिव्यास्त्र दिये और उनके चलाने के मंत्र भी वतलाये।

वहाँ से चल कर कुछ दिनों बाद हम लोग अपने सिद्धाश्रम नामक रमणीय आश्रम में पहुँचे। राम और लक्ष्मण के कहने से मैंने उसी दिन से यज्ञ करना आरम्भ किया। जिस समय विधि पूर्वक मैं यज्ञ करने लगा; उसी समय राक्षस अनेक प्रकार के उत्पात करने लगे। आकाश मेघों की छाया से ढक गया। चारों ओर भयङ्कर शब्द होने लगे और यज्ञ वेदी के ऊपर बड़हल के लाल फूलों की तरह रक्त की बून्दों की वर्षा होने लगी। इन उत्पातों को देख राम ने जान लिया कि उत्पातकारी राक्षस निकट ही हैं। यह जान वे धनुष उठा राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। श्रीराम ने बाण द्वारा मारीच को बहुत दूर फेंक दिया और अन्य राक्षसों को भी वहाँ से मार भगाया। अनन्तर निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर, मैंने राम और लक्ष्मण को आशीर्वाद दिया।

राजर्षि! यज्ञ पूरा हो चुकने पर मैंने आपके इस यज्ञानुष्ठान का वृत्तान्त सुना और इसे देखने को मैं उत्सुक हुआ। जब मैंने महादेवजी के धनुष का वृत्तान्त इन दोनों को सुनाया; तब ये दोनों भी उसे देखने को उत्सुक हुए। तब मैं इन दोनों को अपने साथ लेकर यहाँ आया। रास्ते में हम लोगों को विशाला नगरी में ठहरना पड़ा। वहाँ से चल कर मिथिला के समीप हम लोग गौतम के आश्रम में पहुँचे। वहाँ श्रीरामचन्द्र जी ने गौतम की देवरूपिणी नारी अहिल्या को शाप से छुड़ाया। गौतमी, अपने पति के शाप से पत्थर का रूप धारण कर, श्रीरामचन्द्र के दर्शन करने के लिये घोर तपस्या कर रही थी। वह अब इनके दर्शन कर, पाप से छूट

गयी और पति के साथ तप करने के लिये वह वन में चली गयी। राजन्! ये दोनों दशरथ-कुमार उस अद्भुत् धनुष को देखने के लिये आपके यहाँ आये हैं। आप इनकी अभिलाषा पूरी कर मुझे बाधित कीजिये।"

उन दोनों राजकुमारों के गुणों का इस प्रकार परिचय पाकर, जनक बहुत प्रसन्न हुए और उन दोनों की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। अगले दिन विश्वामित्र के कथनानुसार जनक ने नौकरों को आज्ञा दी कि महादेव जी वाला धनुष ले आओ। जब धनुष आ गया; तब विश्वामित्र ने श्री रामचन्द्र जी से कहा—"बेटा! जाकर इस धनुष को देखो।" श्रीरामचन्द्र ने महर्षि की आज्ञानुसार उस सन्दूक का ढक्कन खोला, जिसमें वह धनुष रखा था। धनुषको देखकर श्री रामचन्द्र ने पूँछा:— "मैं इस धनुष को अब हाथ से देखना चाहता हूँ। क्या इसे निकाल कर मुझे इस पर रोदा भी चढ़ाना पड़ेगा?" इस प्रश्न के उत्तर में विश्वामित्र और जनक ने कहा—"हाँ।" तब सब के सामने उसे उठा कर श्रीरामचन्द्र जी ने उस पर रोदा चढ़ाया और ज्योंही रोदे की टङ्कार करनी चाही, त्योंही उस धनुष के बीच से दो टुकड़े होगये। उसके टूटते ही वज्र के घहराने जैसा भयङ्कर शब्द हुआ। उसे सुन लोग अचेत से होगये।

धनुष के टूटते ही महाराज जनक की चिन्ता मिटी। उनके हृदय में हर्ष और आश्चर्य दोनों उत्पन्न हुए। अग्नि की लाल लाल सुन्दर चिनगारी में जैसे जलाने की शक्ति होती है; वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी के सुकोमल शरीर में सिंह समान पराक्रम देख कर, वे श्रीरामचन्द्र की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। भगवान् की कृपा से दशरथ का मन पूरा हुआ। महर्षि

विश्वामित्र से अनुमति लेकर जनक ने एक शीघ्रगामी रथ में दूत को विठा कर, अयोध्या भेजा और उनके द्वारा दशरथ को इस शुभ-संवाद की सूचना दिला कर, प्रार्थना की कि बरात सजा कर कृपया विवाह के लिये शीघ्र यहाँ पधारिये। इतने में दूत ने अयोध्या पहुँच धनुष-भङ्ग होने का शुभ-संवाद दशरथ को सुनाया और जनक का सन्देसा कहा।

अयोध्या में श्रीराम द्वारा धनुर्भङ्ग का आनन्ददायी-संवाद प्रचारित होते ही, घर घर आनन्द मनाया जाने लगा। वहाँ के लोगों के आनन्द की सीमा न रही। ज्यों ज्यों बरात के जाने का दिन समीप आने लगा; त्यों ही त्यों नगर की सजावट और अन्य तयारियों की धूम मच गयी। सब सड़कों की मरम्मत की गयी, ऊँची नीची सड़कें बराबर की गयीं। घर घर तोरण बन्दनवार लटकायी गयीं। नगर भर में बाजों के बजने से चारों ओर आनन्द सा छा गया।

सीता की अवस्था अभी केवल दस या ग्यारह वर्ष की थी। किन्तु जब उन्होंने सुना कि श्रीरामचन्द्र जी ने महादेव जी के धनुष को तोड़ कर, पिता जनक की चिन्ता दूर कर दी है; तब वे राम के प्रति अनुरागवती हुईं। सूर्य्य जिस प्रकार चन्द्रमा को शुभ्र ज्योति प्रदान करता है, वैसे ही राजर्षि जनक शान्त स्वभाव पवित्र चरित श्रीरामचन्द्र के हाथ में प्राण-तुल्या अपनी दुहिता को समर्पण करने के प्रयत्न में संलग्न हुए। थोड़े ही दिनों बाद, भरत, शत्रुघ्न कुलपुरोहित महर्षि वशिष्ठ और असंख्य नौकर चाकरों को ले, दशरथ मिथिला पहुँचे। दशरथ की अवाई सुन, जनक बहुत प्रसन्न हुए और सब का अच्छी रीति से सत्कार किया। अन्त में जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब श्रीराम के साथ सीता जी और अपनी

दूसरी कन्या उर्मिला के साथ लक्ष्मण के विवाह की तयारियाँ होने लगीं। उधर विश्वामित्र और वशिष्ठ जी ने परामर्श कर, जनक के छोटे भाई धर्मशील कुशध्वज की रूपवती दो कन्याओं को भरत और शत्रुघ्न के लिये माँगा। राजा जनक ने उनके इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकृत किया। राजा दशरथ भी अपने चारों पुत्रों के एक ही समय एक ही स्थान पर विवाह होने की बात पक्की होने पर बहुत प्रसन्न हुए।

विवाह का दिन उपस्थित होने पर, राजकुमार सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहन कर, वशिष्ठादि ऋषियों सहित, विवाहमण्डप में पहुँचे। राजकन्याएँ भी अनेक प्रकार के बहुमूल्य कपड़े और गहने पहन कर, जनक के साथ वहाँ आयीं। महर्षि वशिष्ठ ने वेदी बना कर, उस पर अग्नि स्थापन किया और उसके प्रज्ज्वलित होने पर वे आहुति देने लगे। तब राजा जनक लज्जावनतमुखी सीता को श्रीराम के सामने और अग्नि के समीप खड़ी करके कहने लगे—"राम! यह सीता हमारी दुहिता है। यह तुम्हारी सहधर्मिणी हुई। तुम इसका पाणिग्रहण करो, तुम्हारा मङ्गल हो। यह महाभागा पतिव्रता हो और छाया की तरह तुम्हारे पीछे पीछे रहे।" राजर्षि ने यह कह कर, श्रीराम के हाथ में मंत्रपूत जल डाला। जो लोग उस समय वहाँ उपस्थित थे, वे धन्य धन्य कहने लगे और चारों ओर दुन्दुभी बजने लगीँ एवं फूलों की वर्षा होने लगी।

जनक ने जिस प्रकार सीता को श्रीरामचन्द्र जी को सौंपा वैसे ही प्रसन्न होकर उर्मिला लक्ष्मण जी को, माण्डवी भरत जी को, और श्रुतिकीर्त्ति शत्रुघ्न जी को समर्पण की। भगवान् वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार चारों राजकुमारों ने उक्त चारों

कन्याओं का पाणिग्रहण किया और वे अपनी सहधर्मिणियों सहित जनमासे में लौट गये। जनमासे में बधुओं को देख महाराज दशरथ के आनन्द की सीमा न रही।

विवाह हो चुकने पर दूसरे दिन बरात के विदा होने की तयारियाँ होने लगीं। जनक ने दायजे में अनगिनतिन गौ, घोड़े, हाथी, मूंगा, चांदी सोने के वढ़िया वढ़िया गहने, कम्बल, रेशमी कपड़े, रथ, पैदल आदि दिये और प्रत्येक लड़की की सेवा के लिये सौ सौ दास दासियां दीं। फिर उन्होंने कुछ दूर तक पैदल, दशरथ के पीछे पीछे, जाकर आंखों में स्नेह के कारण आंसू भर, लड़कियों को विदा किया। चन्द्रमा के अस्त होने पर जैसे पृथिवी पर अन्धेरा छा जाता है, वैसे ही जनक का घर सीता विना सूना और अन्धकारमय दीख पड़ने लगा।

इधर दशरथ, पुत्र और बधुओं सहित अयोध्या की ओर हँसते हँसाते रवाने हुए। रास्ते में उन्हें डरावनी मूर्त्ति धारण किये परशुराम जी मिले। महादेव जी का धनुष तोड़ने के लिये वे श्रीरामचन्द्र जी के समझाने बुझाने पर शान्त होकर लौट गये। बरात के लौटने का संवाद सुन, अयोध्यावासी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने राजधानी को अच्छी तरह सजाया। महाराज दशरथ की पटरानी और रानियाँ बहुओं का मुख देख बहुत प्रसन्न हुईं। चारों पुत्रों का विवाह कर, महाराज दशरथ अन्य आवश्यक कार्य करने लगे।

तीसरा अध्याय।

अयोध्या में पहुँच कर दशरथ ने श्रीरामचन्द्र जी के रहने के लिये अलग एक भवन बनवा दिया। श्रीरामचन्द्र जी राजकाज और माता पिता की सेवा शुश्रूषा से छुट्टी पाकर अवसर मिलने पर, शेष समय सीता जी के साथ रह कर बिताते थे। सीता को वे अनेक धर्म और नीति की कथाएं सुनाया करते थे और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्र सुना कर, सीता जी को पातिव्रत धर्म की शिक्षा दिया करते थे। सीता जी भी उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुना करती थीं। सीता जी भी कभी कभी अपने बाल्यावस्था का वृत्तान्त सुनाया करती थीं। वह सब वृत्तान्त भी कभी कभी कहा करतीं जो उन्होंने अपने पिता के घर में रह कर ऋषि मुनियों के मुख से सुने थे। ऋषि मुनियों से वन की मनोहर शोभा का वृत्तान्त सुन, सीता जी अब तक वन की शोभा देखने के लिये लालायित थीं और कभी कभी पूँछा करती थीं कि वन में घूमने के लिये आप कब चलेंगे। श्रीरामचन्द्र जी भी सीता जी का यथेष्ट आदर कर, उनको प्रसन्न किया करते थे।

श्रीरामचन्द्र जी को लक्ष्मण अधिक प्रिय थे और लक्ष्मण भी सदा उनकी आज्ञापालन किया करते थे। वे लड़कपन ही

से श्रीरामचन्द्र जी के पक्षपाती थे और उनके अनुरागी थे। श्रीराम जहाँ जाते लक्ष्मण भी धनुर्बाण धारण कर, उनके पीछे हो लिया करते थे। लक्ष्मण के विना श्रीरामचन्द्र जी को क्षण भर भी चैन नहीं पड़ता था और न वे कोई काम ही करते थे। लक्ष्मण जी केवल श्रीराम ही की सेवा में नहीं लगे रहते थे किन्तु वे सीता जी की भी सेवा टहल किया करते थे। सीता भी उनको देवर समझ उन पर स्नेह करती थीं।

सीता, कौशल्या आदि सासों की मन लगा कर सेवा शुश्रूषा किया करती थीं। उनकी सासें भी उन्हें अपनी कन्या से बढ़ कर समझती थीं। यहाँ तक कि सीता की वे इतनी सुध रखती थीं कि सीता जी अपने माता पिता के वियोग-दुःख को भूल गयीं।

इस प्रकार आनन्द ही आनन्द में कई एक वर्ष बीत गये। देखते देखते सीता जी के विवाह को हुए बारह वर्ष बीत गये। अब सीता जी के स्वभाव में पहले जैसी चञ्चलता नहीं रही। किन्तु उनके मुख-मण्डल पर सरलता और पवित्रता का प्रकाश अब तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। उनमें अब चञ्चलता के बदले गम्भीरता आ गयी है। श्रीराम और सीता—एक दूसरे की ओर से अनुरक्त हैं। इस प्रकार सुख और सन्तोष के साथ दोनों के दिन व्यतीत हो रहे हैं, इतने में उनके जीवन रूपी नाटक के नये अङ्क का सूत्रपात हुआ।

महाराज दशरथ को वृद्धावस्था में चार पुत्ररत्नों का लाभ हुआ था। उनका चारों पुत्रों में समान रूप से स्नेह था। उन के चारों पुत्र भी सुशील, सच्चरित्र और पिता में पूरी भक्ति रखते थे। किन्तु तारों के बीच जैसे चन्द्रमा भला लगता है, वैसे ही भाइयों के बीच श्रीरामचन्द्र जी भले लगते थे। श्री

रामचन्द्र जी जैसे प्रियदर्शन और मिष्टभाषी थे, वैसे ही सत्यव्रत और पराक्रमशाली भी थे। शास्त्र और शस्त्रविद्या में जैसे वे पारदर्शी थे, वैसे ही विनय और क्षमा भी उनके चरित्र का प्रधान अलङ्कार थी। एक ओर तो वे प्रजा के हित में लगे रहते और दूसरी ओर गुण्डे और हेकड़ों को अच्छी तरह दण्ड दिया करते थे। उनको जिस प्रकार प्रजापालन और राज्यशासन के विविध उपाय मालूम थे, वैसे ही वे धर्म को सर्वत्र जययुक्त करने के अर्थ प्राणपण से यत्न किया करते थे। श्रीराम इस प्रकार के नृपतिदुर्लभ समस्त गुणों से अलङ्कृत हो, प्रजा और विशेष कर दशरथ के परम प्रीतिभाजन हो गये थे। अयोध्या की प्रजा श्रीराम में दशरथ से भी अधिक अनुराग रखती थी। जब दशरथ ने देखा कि श्रीरामचन्द्र इतने अधिक प्रजाप्रिय हो रहे हैं, तब वे मनही मन बहुत प्रसन्न होने लगे। बूढ़े होने के कारण अब उनसे भली भाँति राज्य का शासन नहीं हो सकता था, इसलिये उन्होंने लोकाभिराम श्रीरामचन्द्र ही को युवराज बना कर स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का संकल्प किया। अनन्तर इस संकल्प के अनुसार कार्य करने के पूर्व, परामर्श के लिये उन्होंने एक बड़ी राजसभा की, जिसमें उनके मंत्रियों के अतिरिक्त कोशलराज्य के सभी बड़े छोटे सूरसामन्त और दूर दूर के अधीनस्थ राजागण बुलाये गये। जब वे आये ; तब उनके ठहरने आदि का उनकी मर्य्यादानुसार उत्तम प्रबन्ध किया गया।

प्राचीन समय के भारतवर्षीय राजाओं के प्रबल प्रतापान्वित होने पर भी, प्रजा को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने की इच्छा उनकी बड़ी बलवती हुआ करती थी। प्रजा भी अपने राजा को देवतुल्य जान कर, पूजा करती थी और राजा भी बिना

प्रजा से पूँछे बताये किसी नये काम में हाथ नहीं डालते थे। जब कोई महत्व का काम करना होता; तब राजा, प्रजा को बुला कर एक महती सभा करते थे और प्रजा के प्रधानों से परामर्श लेते थे। न तो प्रजा के प्रधान ही राजा के डर से भीत होकर कभी किसी अन्याययुक्त अथवा अनुचित कार्य का समर्थन करते थे और न राजा उनके उचित परामर्श के विरुद्ध मनमाना काम करते थे। महाराज दशरथ ने श्रीराम-चन्द्र जी को युवराज के पद पर अभिषिक्त करने के विषय में, सब से परामर्श लेने के अभिप्राय से, यह विशेष अधिवेशन किया था।

जब सब लोग सभाभवन में बैठ गये, तब महाराज दशरथ ने गम्भीर स्वर से सभाभवन को गुञ्जाते हुए कहाः—

दशरथ—सूर सामन्त गण! हम अब वृद्ध हो गये हैं। हमने राज्य की भलाई के लिये शरीर की कुछ भी चिन्ता न कर, बहुत वर्षों तक राज्य शासन और प्रजापालन किया है। अब हम चाहते हैं कि राज्य का भार श्रीरामचन्द्र को सौंप कर, हम छुट्टी लेले। श्रीराम इस भार को उठाने के योग्य हैं कि नहीं। या उनसे बढ़ कर, यदि दूसरा कोई इस योग्य हो, तो आप लोग बतलावें।

दशरथ ने श्रीरामचन्द्र जी को युवराज बनाने का विचार किया है—यह जान कर उस सभा में आनन्दध्वनि हो उठी। सब लोग एक स्वर हो कहने लगे—"श्रीरामचन्द्र ही को राज्य-भार देना चाहिये।" यह कह कर, लोग महाराज दशरथ के

सामने श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे और बारम्बार उन्हींको युवराज पद के योग्य बतलाने लगे।

सब की सम्मति लेकर महाराज दशरथ ने श्रीरामचन्द्र को युवराज पद पर नियुक्त करने की घोषणा की। उसे सुन बूढ़े बारे—सभी आयोध्यावासी आनन्द में विह्वल हो गये। आयोध्या में चारों ओर आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं। महाराज दशरथ की आज्ञानुसार सारा राजपथ परिष्कृत और सुसज्जित हो गया और अभिषेक की सामग्री इकट्ठी की जाने लगी। कुल पुरोहित वशिष्ठ आरम्भिक क्रिया आरम्भ करने की तय्यारियाँ करने लगे। सीता ने इस आनन्द में पति के साथ ईश्वराराधन में सारी रात बितायी और दोनों उस गुरु भार के उठाने के लिये तयार हुए।

सीता अब राजवधू से राजमहिषी होंगी—यह विचार कर, क्या वे आनन्द विह्वल हुईं ? सामान्य स्त्रियों जैसी सीता की प्रकृति न थी। आत्म सम्मान और पद गौरव को वे तुच्छ समझती थीं। उन्हें अपनी कुछ भी चिन्ता न थी। वे अपने स्वामी की मङ्गल चिन्ता को छोड़, अन्य किसी प्रकार की चिन्ता नहीं किया करती थीं। अपने को तो वे विल्कुल भूल गयी थीं और अपने स्वामी के लिये जीवन धारण किये हुए थीं। इसीसे पति को सुखी देख वे भी प्रसन्न थीं। आज उनके हृदय के आराध्य देवता राज्यभार ग्रहण कर, प्रजापालन व्रत की दीक्षा लेंगे—यह सोच कर ही सीता का मन प्रसन्न है। स्वयं पटरानी होंगी—इसकी तिल भर भी प्रसन्नता सीता जी को नहीं है। सीता जी के चरित्र में यही विशेषता है—इसे समझ लेने पर, सीता का माहात्म्य समझने में कठिनाई नहीं पड़ेगी।

रात बीती—सबेरा हुआ। सूर्य्य के उदय होते ही अयोध्या नगरी में आनन्दध्वनि होने लगी। श्रीरामचन्द्र और सीता, दोनों शुचि और निर्मलचित्त हो कर, शान्तचित्त से अपने राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतने में सुमन्त ने आकर श्रीरामचन्द्र को प्रणाम किया और कहा—"महाराज ने आपको स्मरण किया है।" इतना कह सुमन्त एक ओर खड़ा हो गया।

चौथा अध्याय ।

मन्थरा बड़े बुरे स्वभाव की स्त्री थी। वह देखने में जैसी कुत्सित थी वैसा ही कुत्सित उसका स्वभाव भी था। मन्थरा, कैकेयी की मुँह लगी टहलनी थी। कारण यह था कि कैकेयी उसे अपने पिता के घर से अपने साथ लायी थी। कैकेयी राज-कन्या थी, अतः उसका स्वभाव भी उच्चश्रेणी का था। वह नीचता को घृणा की दृष्टि से देखती थी, किन्तु वह दृढ़ चरित्र की स्त्री न थी। वह स्वयं कोई कार्य्य करने के पूर्व उसके अच्छे बुरे परिणाम को समझ बूझ कर कार्य्यारम्भ नहीं करती थी। इसीसे उसे मन्थरा की सलाह लेनी पड़ती थी और मन्थरा बड़ी कूट सलाह देती थी। इससे कैकेयी का उपकार न हो कर, अपकार ही हुआ करता था।

मन्थरा थी तो क्रूर स्वभाव की, किन्तु थी बड़ी बुद्धि-मती। कैकेयी तो अपनी भलाई बुराई को नहीं समझती थी, किन्तु मन्थरा के कथनानुसार कार्य कर के कैकेयी ने बूढ़े महाराज दशरथ को अपने हाथ में कर लिया था। सचमुच महाराज दशरथ का अन्य रानियों की अपेक्षा, कैकेयी पर अधिक प्रेम था। कौशल्या को वे सम्मान की दृष्टि से देखते तो थे, किन्तु उनका प्यार कैकेयी ही पर अधिक था।

हाल की घटना से मन्थरा बड़ी चिन्ता में पड़ी है। कैकेयी-पुत्र भरत, महाराज के ज्येष्ठ पुत्र नहीं हैं, इस लिये कैकेयी के राज-माता कहलाने का कोई उपाय नहीं है। भरत जन्म के अनु-सार महाराज के दूसरे पुत्र थे। कैकेयी सुशील पुत्र पाकर बड़ी प्रसन्न थी और महाराज के अन्य पुत्रों को भी अपने पुत्र के बराबर समझ सदा प्रसन्न रहा करती थी। विशेष कर श्रीराम की साधुता, सत्यपरायणता भ्रातृवत्सलता को देख कर, वे उनकी बड़ी पक्षपातिनी थी। श्रीराम जब सर्वजन प्रिय थे, तब वे कैकेयी के स्नेहभाजन क्यों न होते? अभी तक श्रीराम के विरुद्ध कैकेयी के मन में कोई विरुद्ध भाव उत्पन्न नहीं हो पाया था। किन्तु मन्थरा को कैकेयी का राम के प्रति ऐसा बर्ताव बड़ा बुरा लगता था और वह अपने मन का भाव प्रकट करने का अवसर ढूढ़ रही थी। भाग्यवश अब उसे अपनी चिर अभिलाषा पूरी करने का समय मिला।

श्रीराम के अभिषेक की बात के फैलते ही आयोध्या भर में धूम पड़ गयी। उस धूम का कारण जानने के लिये मन्थरा एक ऊँची अटारी पर चढ़ी और उसने देखा कि घर घर बन्दनवारें बँधी हुई हैं और ध्वजा पताका फहरा रही हैं। सब सरकारी सड़कों पर छिड़काव किया गया है, रोशनी करने के लिये सड़कों के दोनों ओर दीपमालिका का प्रबन्ध किया जा रहा है। राजधानी में जितने देवालय हैं, वे सब कलई से पोते जा रहे हैं और नगरवासी तरह तरह के विचित्र आभूषण वस्त्र और मालायें पहन कर फूले अङ्ग नहीं समाते। मन्थरा ने अपने सामने खड़ी एक दाई से इस धूमधाम का कारण पूँछा।

दाई ने सारा हाल मन्थरा से कहा। कारण सुन कर, मन्थरा के मन में बड़ी विकलता उत्पन्न हुई। उसके नेत्रों के सामने भरत और कैकेयी के अन्धकारमय भविष्य की उदासीन मूर्त्ति आ खड़ी हुई। सवेरा होते ही रामचन्द्र राजसिंहासन पर बैठेंगे। उनके एक बार राजगद्दी पर अभिषिक्त हो जाने पर, फिर उन्हें कौन नीचे उतार सकता है। तब भरत के राज्य पाने का क्या कोई उपाय नहीं है ? इस प्रकार सोचती विचारती मन्थरा के मन में नैराश्य के बदले आशा का सञ्चार हुआ और वह शीघ्रता पूर्वक कैकेयी के भवन में पहुँची।

भवन में पहुँचते ही मन्थरा ने कैकेयी से कहा:—

मन्थरा—कैकेयी ! तुम तो अपने सुख और सौभाग्य की चिन्ता ही में आठो पहर लगी रहती हो। तुम्हारे घर के बाहर क्या हो रहा है, तुम्हें यह बात मालूम तक नहीं। तुम अपने को महाराज की प्यारी रानी समझ सदा अभिमान में चूर रहती हो। किन्तु अब तुम्हारा वह सारा अभिमान धूल में मिला चाहता है।

मन्थरा की व्यङ्ग भरीं इन बातों को सुन, कैकेयी ने यथार्थ बात खोल कर कहने का उससे अनुरोध किया। मन्थरा के मुख से राम के राज्याभिषेक का संवाद सुन, कैकेयी बहुत प्रसन्न हुईं और प्रसन्न हो कर, एक बहुमूल्य आभूषण उतार कर, उसे दिया। भौंड़ी बुद्धि वाली कैकेयी के अप्रत्याशित आचरण को देख, मन्थरा ने क्षोभ और रोष की भीषण मूर्त्ति

धारण की। कैकेयी के दिये हुए आभूषण को फेंक कर वह कैकेयी की मन्द बुद्धि की निन्दा करने लगी। फिर कैकेयी को समझा कर वह बोली:—

मन्थरा—अरी निर्बुद्धिनी! तूनें तो बड़ी निर्लज्जता धारण की है। तू अपनी भलाई बुराई को तिल भर भी नहीं विचारती। रामचन्द्र राज राजेश्वर हो जायगा, तब तेरी भलाई न हो कर तेरे लिये काँटे बोये जाँयगे। भरत को सदा राम के अन्य नौकर चाकरों की तरह रहना पड़ेगा। तब नौकर भरत की माता को भी कौशल्या और सीता को प्रसन्न रखने के लिये स्वयं चेरी बनना पड़ेगा। इस लिये यदि तुझे अपनी भलाई बुराई की चिन्ता हो, तो ऐसा कर जिससे राम का अभिषेक न होने पावे और भरत को राजगद्दी मिले।

कैकेयी ने स्नेह के वशीभूत हो, राम के विरुद्ध मन्थरा के इस घृणित प्रस्ताव को अश्रद्धा और अनादर की दृष्टि से देखा; किन्तु अन्त में मन्थरा की प्रवल युक्तियों के सामने उसकी साधुता को हार माननी पड़ी। कैकेयी ने मन्थरा की बात को मान लिया और उसकी बात को मान कर, उसके प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने को अग्रसर हुई। एक क्षण ही में जो स्वर्णलता के समान मनोहारिणी शोभा युक्त थी, वह ही अब भयङ्कर काल भुजङ्गिनी का रूप धारण कर, रङ्ग में भङ्ग डालने को कृतसंकल्पा हुई।

कैकेयी कहने लगी:—

कैकेयी—मन्थरे! तुम तो हमारी शुभाकाङ्क्षिणी हो; अब इस विपत्ति से जिस प्रकार छुटकारा मिले वह उपाय बतलाओ। महाराज ने मेरे पुत्र को यदि राजगद्दी न दी, तो मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं विष खा कर, मर जाऊँगी।

मन्थरा (प्रसन्न हो कर)—महिषि! तुम तो इसका उपाय जानती हो। किन्तु जान पड़ता है, इस समय तुम्हें वह उपाय याद नहीं रहा। बहुत दिन हुए महाराज सम्बर नामक असुर के साथ युद्ध कर के घायल हुए थे। उस समय युद्ध क्षेत्र में तुम ही उनके साथ थीं और तुम्हारी सेवा शुश्रूषा ही से उस समय उनकी प्राणरक्षा हुई थी। तब महाराज ने, प्रसन्न हो कर तुम्हें दो वर देने चाहे थे; किन्तु तुमने उस समय उन वरों का लेना उचित नहीं समझा था और कहा था, कि जब आवश्यक समझूँगी, माँग लूँगी। इस समय तुम उन्हीं दोनों वरों का महाराज को स्मरण दिला कर, प्रथम वर से तो राम को चौदह वर्ष के लिये वन में भिजवाओ और दूसरे वर से भरत का राज्याभिषेक कराओ। राम ने सारी प्रजा को अपनी मुट्ठी में कर रखा है; किन्तु चौदह वर्ष के भीतर, भरत निस्सन्देह सारी

प्रजा को अपने वश में कर लेंगे। इससे तुम अभी कोपभवन में जा कर, आँसुओं के जल से धरती को तर करो। महाराज अवश्य ही तुम्हें देखने आवेंगे। उस समय कौशल पूर्वक उन्हें सत्यरूपी पाश में बाँध कर, वर माँगना। तब जो तुम चाहती हो सो होगा।

मन्थरा के बतलाये उपाय को सुन, कैकेयी के आनन्द का आरपार नहीं रहा। उसने वारम्वार मन्थरा की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की और कृतज्ञता पूर्वक गले लगा कर, उसे बहुत सा धन दिया। इस प्रकार कैकेयी अपनी दासी मन्थरा को प्रसन्न कर, और क्रोध सूचक रूप धारण कर, कोपभवन में जा पड़ी।

राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक की तैयारी करने की आज्ञा देकर, यह शुभ समाचार रानियों को सुनाने के लिये भवन में गये। सब से पहले वे कैकेयी के भवन में गये; परन्तु उसे वहाँ न देख अचम्भित हुए। महारानी कोपभवन में हैं; ड्योढ़ीवान के मुँह से यह बात सुन कर, महाराज घबड़ा गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि सचमुच ही ककेयी मैले कपड़े पहन कर, धूल में लोट रही है। उसके आँसुओं से वहाँ की भूमि भींगी हुई है। महाराज अपनी प्रियतमा की यह असम्भावित अवस्था देख चिन्तित हुए, और प्रेमपूर्वक मीठे शब्दों से उन्होंने महारानी के कोप का कारण पूँछा, परन्तु महारानी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया—"क्या तुम्हारे शरीर में कुछ पीड़ा हुई है, क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है, अथवा हमही से कुछ अपराध हो गया है?" राजा ने

येही बातें बार बार पूँछी, कैकेयी चुप थी। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। कुछ देर के बाद आखें डबडबा कर और सिसिकती हुई वह कहने लगी कि महाराज मेरे शरीर में पीड़ा नहीं है, मेरा अपमान किसी ने नहीं किया है। आपका भी कुछ अपराध नहीं है, परन्तु मैं एक प्रार्थना करना चाहती हूँ। यदि आप उसे पूर्ण करने को कहें, तो मेरा दुःख दूर होगा; नहीं तो आपके देखते देखते मैं यहीं प्राण छोड़ दूँगी। कैकेयी की बात सुन कर, हँसते हुए महाराज ने उसकी प्रार्थना पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की। सुचतुरा कैकेयी ने राजा को सत्यरूपी पाश में बाँध कर, हितैषिणी मन्थरा के उपदेशानुसार, जिस विष को उगला, उससे शीघ्र ही वह राजभवन श्मशान के समान जान पड़ने लगा। उस राजभवन में शोक छा गया।

कैकेयी ने सम्बर युद्ध का स्मरण करा कर, कहा:—

कैकेयी—महाराज! उस समय मेरी सेवा से प्रसन्न हो कर आपने दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, उस समय मैंने वर नहीं लिये और उपयुक्त समय पर वर देने की प्रार्थना की थी, आज उन्हींको पाने की प्रार्थना करती हूँ। पहले वर से कल सवेरे ही रामचन्द्र को चौदह वर्ष वनवास के लिये दण्डकारण्य में भेज दीजिये, और दूसरे वर से मेरे पुत्र भरत को युवराज बना दीजिये। आप अपनी पहली प्रतिज्ञा का पालन कर, सत्य की मर्यादा की रक्षा कीजिये—यही मेरी प्रार्थना है।

कैकेयी की इस कठोर प्रार्थना को सुन कर महाराज दशरथ वज्र से मारे हुए के समान एक बार ही मूर्च्छित हो गये। उनके मुह पर धूल उड़ने लगी। यह सोते हैं या जागते हैं यह कुछ भी उन्हें मालूम नहीं पड़ता था। दुःख और क्रोध से उनका कण्ठ रुक गया आँसुओं की धारा बहने लगी। वह बहुत देर के बाद आह भर के कैकेयी का तिरस्कार करने लगे।

दशरथ—कैकेयी! आज तक मैं तुम्हें चन्दनलता समझता था, परन्तु तुम साँपिन हो। राम ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? दुर्वृत्ते! अपनी माता से बढ़ कर राम तुम्हारी भक्ति करते हैं। राम के वनवास की याञ्चा करते तुम्हारी पापिनी जिह्वा क्यों न टुकड़े टुकड़े हो गयी। राम के बिना मैं एक मुहूर्त भी नहीं जी सकता। कैकेयी प्रसन्न होओ। राम के वनवास के अतिरिक्त और कुछ माँगो। उसे पूर्ण करने के लिये हम तैयार हैं।

स्त्री जाति में स्वभाव ही से दया होती है। उनका हृदय यदि उच्च विचारों से पूर्ण और धर्मयुक्त हो तो वे पवित्रता की साक्षात् मूर्त्ति हैं। उदारता ही उनका प्रधान अङ्ग है। परन्तु जब इनमें निकृष्ट वासना और अधर्म का उदय होता है तब इनके लिये असाध्य भी कुछ नहीं रहता। उस समय ये अनेक पाप कर्म भी कर डालती हैं। जगत् में अशान्ति अनर्थ आदि खड़ा कर देती हैं। उस समय इनके हृदय की स्वाभाविक कोमलता के स्थान में कठोरता, दया के स्थान में निर्दयता और उदारता के बदले स्वार्थपरता उत्पन्न हो जाती

है। कैकेयी ने अधम स्वार्थपरता के वशीभूत होकर, दुःखी महाराज के विलाप और तिरस्कार पर कुछ भी ध्यान न दिया मानो उसने कुछ सुना ही नहीं। महाराज की मृतप्राय आकृति देख कर भी, उसके हृदय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ, प्रत्युत वह शोक पीड़ित बूढ़े महाराज का उपहास कर और अधिक ताने देकर उन्हें और भी अधिक दुःख देने लगी। महाराज की बुद्धि उस समय नष्ट हो गयी थी, उन्हें कुछ नहीं सूझता था। वे कभी कभी बालकों के समान चिल्ला चिल्ला कर रोने लगते थे, कभी कैकेयी के पैरों पड़ते थे, कभी मूर्च्छित होकर, भूमि पर गिर जाते थे, कभी उन्मत्त के समान इधर उधर घूमने लग जाते थे। परन्तु दुष्टा कैकेयी का हृदय नहीं पिघलता था। इस प्रकार वह प्रलयकाल की रात्रि समाप्त हुई।

"बाजहिं बाजन विविध विधाना।
पुरप्रमोद नहीं जाय बखाना॥
कनक सिंहासन सीय समेता।
बैठहिं रामु, होई चितचेता॥" —रामायण

रात बीत गयी, श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक की सब सामग्री तैयार हैं। वसिष्ठ आदि ऋषि और ब्राह्मणगण सभा में उपस्थित हैं, अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर वासियों के आनन्द की सीमा नहीं है। लोग कह रहे हैं कि सुवर्णसिंहासन पर सीता के साथ रामचन्द्र विराजें और हम लोगों का चित्त प्रसन्न हो। परन्तु अभी तक महाराज दशरथ सभामण्डप में उपस्थित नहीं हुए। महर्षि वसिष्ठ ने कारण जानने के लिये सुमंत्र को राजभवन में भेजा। सुमंत्र ने भवन में जाकर और पर्दे के बाहर ही खड़े हो कर, आनन्द पूर्वक

महाराज को उठाने के लिये और श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक मङ्गल करने के लिये प्रार्थना की। महाराज दशरथ सुमंत्र की बात सुन कर, अत्यन्त दुःखी हुए और डबडबायी आँखों से उनकी ओर ताक कर, बोले; "सुमंत्र! तुम्हारी इन बातों को सुन कर, हमको अत्यन्त दुःख होता है।" महाराज की ऐसी दुःख भरी बात को सुन कर, सुमंत्र को अचम्भा हुआ और वह कुछ और आगे बढ़ा। कैकेयी ने सुमंत्र को अपने समीप बुलाया और कहा कि—"सुमंत्र! रामचन्द्र के राज्याभिषेक के हर्ष में महाराज ने समूची रात जाग कर बितायी है। अतएव महाराज बहुत थक गये हैं। तुम जाओ रामचन्द्र को शीघ्र ही यहाँ बुला लाओ।" सुमन्त्र महाराज की ओर उनकी आज्ञा सुनने के लिये देखने लगे। महाराज की आज्ञा पाकर रामचन्द्र को बुलाने के लिये सुमन्त्र वहाँ से चले।

रामचन्द्र और सीता ने कुशशय्या पर सो कर, रात बितायी थी। प्रातःकाल के कृत्यों से निवृत्त होकर रामचन्द्र जी बैठे हुए थे, उसी समय जाकर सुमन्त्र ने प्रणाम पूर्वक उनको महाराज की आज्ञा सुनायी। राम और सीता दोनों ने समझा कि महाराज राज्याभिषेक के लिये बुला रहे हैं। जो हो, पिता की आज्ञा सुन कर, शीघ्र ही सुमन्त्र के साथ जहाँ पिता थे, वे वहाँ गये। वहाँ की लीला देख कर, रामचन्द्र को अचम्भा हुआ। महाराज कैकेयी के पास बैठे हैं, उनका मुख सूखा हुआ है और उनकी आकृति से दीनता टपक रही है। रामचन्द्र ने पिता के समीप जाकर, पिता और माता को प्रणाम किया। दशरथ ने राम को देख कर, कहा—"राम" और उसी समय वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पितृभक्त राम पिता

की ऐसी अवस्था देख, अधीर हुए, उनका मुँह सूखने लगा, और चित्त व्याकुल हो गया । उन्होंने पूँछा :-

रामचन्द्र—माता ! आज पिता हमको देख एकाएक मूर्च्छित क्यों हो गये? आज पहले जैसी मेरे साथ आनन्द पूर्वक बात चीत ये क्यों नहीं करते ? क्या कुछ रोग हुआ है । क्या मैंने कुछ विरुद्धाचरण किया है ? आप इसका कारण मुझे साफ साफ बतलावें । मैं सुनने के लिये व्याकुल हो रहा हूँ । महाराज की ऐसी अवस्था देख कर, न मालूम मेरा चित्त कैसा हो रहा है !

निर्लज्जा कैकेयी ने कहा:—

कैकेयी—वत्स ! तुम्हारे पिता को कोई रोग नहीं हुआ है । परन्तु इन्होंने अपने मन में एक विचार ठाना है ; परन्तु लज्जा के कारण तुमसे कुछ कह नहीं सकते । क्योंकि तुम महाराज के अत्यन्त प्रिय हो । अतएव तुमसे अप्रिय बात कहते, इनको लज्जा आती है । महाराज तुम्हारे साथ बात नहीं करते, इस कारण तुम्हें दुःखित नहीं होना चाहिये । तुम्हारे पिता एक प्रतिज्ञा से मेरे निकट बँधे हुए हैं, यदि तुम उस प्रतिज्ञा का पालन करो, तो इनके सत्य की रक्षा हो, और उस प्रतिज्ञा का हाल भी मैं तुमसे कहूँ ।

रामचन्द्र पिताकी आज्ञा से अग्नि में कूद सकते हैं, समुद्र में डूब सकते हैं। इसी कारण कैकेयी की बातों से उन्हें दुःख हुआ। वे बोले:—

रामचन्द्र—मैं! प्रतिज्ञा करता हूँ पिता जो आज्ञा देंगे मैं उसीका पालन करूँगा। इस बात में लेश मात्र भी तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये। पिता की आज्ञा क्या है, सो बतलाओ, और पिता को प्रसन्न करो।

उस समय राक्षसी कैकेयी ने सभी बातें आनन्द पूर्वक कह सुनायीं। रामचन्द्र को चौदह वर्ष वनवास करना होगा और रामचन्द्र के स्थान पर भरत का राज्याभिषेक होगा। कैकेयी ने ये ही दो वर महाराज से माँगे हैं। परन्तु महाराज एक ओर रामचन्द्र में अधिक स्नेह होने के कारण और दूसरी ओर धर्म के भय से, व्याकुल हो गये हैं। कर्तव्यपरायण पुत्र के समान राम को अपने पिता की सत्यता का पालन करना चाहिये और बहुत शीघ्र मुनियों के वस्त्र पहन कर, वन को जाना चाहिये। नहीं तो दशरथ का दुःख नहीं दूर होगा। अयोध्या छोड़ कर, रामचन्द्र के विना बन गये दशरथ अन्न जल ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव राम को शीघ्रता करना चाहिये।

निर्दयी कैकेयी का कठोर वचन सुन कर, रामचन्द्र कुछ भी व्याकुल नहीं हुए। उन्होंने कहा:—

"सुन जननी, सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितुमात बचन अनुरागी॥
तनय मातपितु तोषनि हारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥"

दोहा।

मुनिगन मिलनु विशेषि वन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि मँह पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू।
विधि सबविधि मोहि सनमुख आजू॥

रामचन्द्र—हम अपनी इच्छा से, प्रसन्नता पूर्वक, प्राणप्रिय भरत को धन रत्न राज्य प्राण और सीता तक को भी देने को तैयार हैं, फिर जब पिता की ऐसी आज्ञा हुई, तब इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है। आप पिता को प्रसन्न करें, मैं इसी क्षण जटावल्कल धारण कर के, दण्डकारण्य की यात्रा करूँगा। केवल माता कौशल्या और सीता को समझाने के लिये कुछ विलम्ब लगेगा। क्या इसीके लिये महाराज इतने दुःखित हुए हैं? यदि पिता स्वयं मुझको यह आज्ञा सुनाते तो मैं कृतार्थ होता। जो हो, मैं तुम्हारी ही आज्ञा सिर पर रख, दण्डकारण्य जाता हूँ।

यह कह कर रामचन्द्र अपने बूढ़े पिता और कैकेयी माता को प्रणाम कर के कौशल्या के भवन में गये। लक्ष्मण उनके साथ ही थे, वह रामचन्द्र के वनवास की बात सुन कर, आग बबूला हो गये। वहाँ से रामचन्द्र के विदा होने पर, बूढ़े राजा का शोक-समुद्र एक बार फिर उछल पड़ा, वह "हा राम! हा राम" कहते कहते मूर्च्छित हुए।

राजा विलाप करते हैं करने दो। आओ, हम लोग इस बड़ी घटना पर एक बार विचार करें। दशरथ ने कैकेयी पर प्रसन्न होकर एक समय दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे उनका वह स्वीकार करना ही उनके लिये विष हो गया। सत्य में बँध जाने के कारण राजा ने अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र को वन में भेज दिया। कैकेयी महाराज दशरथ की स्त्री थी। यदि वे चाहते तो उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर सकते थे और उसकी एक प्रार्थना न मानना क्या उस समय उत्तम नहीं होता? स्त्री के निकट यदि वे असत्यवादी सिद्ध भी हो जाते; तो इससे कुछ विशेष हानि नहीं थी, इस पुस्तक को पढ़ने वाले पाठक पाठिकाओं के मन में ऐसे प्रश्न उठ सकते हैं और दशरथ के प्रति घृणा क्रोध आदि अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु जब देखा जाता है कि दशरथ एक तेजस्वी और सत्यवादी राजा थे और केवल सत्य-पालन के लिये ही उन्होंने प्रिय पुत्र और अपने प्राणों को भी छोड़ने में कुछ सङ्कोच नहीं किया, तब हम लोगों की समझ में उनका स्वाभाविक महत्त्व अनायास आ जाता है। तभी हम लोग जानते हैं कि दशरथ यथार्थ धर्मानुरागी थे। जो धार्मिक या सच्चरित्रवान् हैं, वे क्या घर, क्या बाहर, सभी जगह सत्य की मर्यादा पालते हैं। जगत् नष्ट हो जाय, प्राण चला जाय, तौ भी वे सत्य और न्याय को नहीं छोड़ते। दूसरी बात—क्या स्त्री होने ही से कैकेयी की कुछ प्रतिष्ठा नहीं थी? स्त्रियों के साथ जो प्रतिज्ञा की जाय क्या उसका पालन नहीं करना चाहिये? इसके अतिरिक्त हमको और भी स्मरण रखना चाहिये कि भारतीय पुरुष, स्त्रियों का उचित आदर और सत्कार करते हैं। देवि, आर्ये, आदि महत्त्व सूचक सम्बोधन

शब्द ही इसके प्रमाण हैं। साथ ही पितृवत्सल रामचन्द्र की असाधारण पितृभक्ति का विना उल्लेख किये हम नहीं रह सकते। पितृभक्ति का इस प्रकार का उदाहरण संसार में नहीं मिलेगा। जो पुरुष पिता की सत्य रक्षा के लिये हाथ में आये हुए साम्राज्य के ऐश्वर्य को छोड़ कर, वनवास के समान कठोर व्रत को प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर सकता है; वह प्रत्येक "मनुष्य" के हृदय में पूजित होगा; इसमें क्या आश्चर्य है ?

रामचन्द्र ने कौशल्या के समीप जाकर देखा कि वह अपने पुत्र (रामचन्द्र) के मङ्गल के लिये देवपूजा कर रही हैं। पुत्र को पैरों में पड़ा देख, माता ने स्नेह पूर्वक उनको उठाया और गले लगाया, तथा मस्तक सूँघा। अनन्तर "हमारा पुत्र आज राजा होगा"—यह सोच कर माता के स्नेहमय नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हुई। रामचन्द्र ने अपनी माता के हृदय का भाव जान कर, कहा:—

रामचन्द्र—माँ! आज तुम्हारे आनन्द का कुछ कारण नहीं है; तुम्हारे ऊपर और सीता पर बड़ी विपत्ति आयी है। पिता जी ने माता कैकेयी की प्रार्थनानुसार भरत को राज-सिंहासन और हमको चौदह वर्ष के लिये वनवास दिया है।

यह सुनते ही कौशल्या कटी लता के समान सहसा भूमि पर गिर गयी। रामचन्द्र ने लक्ष्मण की सहायता से अति-कष्ट पूर्वक कौशल्या को आश्वासन दिया। शोक से कौशल्या मरी के समान हो गयी और अपने भाग्य की निन्दा करने

लगी। मुहूर्त्त मात्र ही में राम के वन जाने का समाचार महल भर में फैल गया और चारों ओर से हाहाकार का शब्द सुनाई देने लगा। लक्ष्मण को क्रोध आया और रामचन्द्र तथा कौशल्या के सामने ही वे वृद्ध पिता की निन्दा करने लगे। वे कहने लगे—"महाराज उन्मत्त हो गये हैं, स्त्री के वशीभूत राजा की आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिये।" उसी समय वे दशरथ कैकेयी और भरत को मारने के लिये धनुष और वाण लेकर तैयार हुए। लक्ष्मण के रहते किसकी शक्ति है कि वह रामचन्द्र से विरोध करे? धीर रामचन्द्र लक्ष्मण पर अप्रसन्न हुए, और स्नेह पूर्वक उन्होंने लक्ष्मण का तिरस्कार किया। पिता ही साक्षात् धर्म हैं, पिता से बढ़ कर कोई नहीं है। पिता की आज्ञा का और उनके सत्य का यदि पालन न हो सके, तो राम के जीने का फल ही क्या है, भरत सुशील और भ्रातृभक्त हैं। भरत ने राम लक्ष्मण का कुछ भी अपकार नहीं किया है। कैकेयी माता है, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। रामचन्द्र के तिरस्कार से लक्ष्मण लज्जित हुए, कौशल्या रामचन्द्र की दृढ़ता देख रोने लगी। विना राम को देखे कौशल्या किस प्रकार जी सकती है। यदि राम वन जावेहींगे तो कौशल्या भी सदा के लिये चली जायगी। रामचन्द्र माता को समझाने लगे। उन्होंने कहा, स्वामी के रहते स्त्री का धर्म है कि वह अपने स्वामी की सेवा करे, यदि कोई स्त्री ऐसा न करे तो उसे अपयश और अधर्म दोनों मिलते हैं। पति की सेवा करना ही स्त्री का धर्म है। रामचन्द्र के वन जाने से महाराज अत्यन्त दुःखित होंगे, उस समय यदि कौशल्या समीप में नहीं रहेंगी, तो कौन उनकी सेवा शुश्रूषा करेगा।

राम को वन जाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ देख कर कौशल्या ने अपने पुत्र को आशीर्वाद दिये और सर्वदा उनको कुशल पूर्वक रखने के लिये, देवताओं से प्रार्थना की। माता को प्रणाम कर के रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ अपने भवन में सीता के समीप गये।

पाँचवाँ अध्याय।

मनुष्य तीव्र से तीव्र यंत्रणा और कठिन से कठिन मनस्ताप का प्रसङ्ग आ पड़ने पर किसी न किसी प्रकार उन्हें सह लेता है, किन्तु यदि उस दशा में उसका कोई मित्र या निकट सम्बन्धी उसके प्रति समवेदना अथवा सहानुभूति दिखलावे; तो फिर उसके धैर्य्य का बाँध टूट जाता है और अनेक यत्न करने पर भी वह मनस्ताप बड़े वेग से नेत्रों द्वारा जल बन कर वहने लगता है। श्रीराम अभी तक अपने मन के भाव को छिपाये हुए थे। दशरथ और कौशल्या से विदा होने पर भी उनके मुख पर उनके आन्तरिक भाव प्रकट नहीं हो पाये थे। किन्तु जिस समय वे सीता के निवास-भवन के समीप पहुँचे, उस समय उनके मन में बहुत देर का जमा दुःख उबल पड़ा। श्रीरामचन्द्र के नेत्रों में आँसू भर आये, मुख पर उदासी छा गयी और मन में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उठने लगे। सीता जी देवाराधन पूरा कर, प्रसन्नवदन श्री राम के लौटने की वाट देख रही थी। इतने में श्रीराम ने लज्जित हो कर, उनके भवन के द्वार में पैर रक्खा। जानकी जी

अपने प्रियतम को चिन्तित और शोक-सन्तप्त देख कर, काँप उठी और विकल होकर श्रीरामचन्द्र जी से पूँछने लगी :-

सीता जी—नाथ! आपको यह हुआ क्या? अचानक यह दशा क्यों बदल गयी। आज तो आनन्द की घड़ी है। ऐसे शुभ समय में आप चिन्तित और दुःखी क्यों हो रहे हैं? आपके सीस पर सफेद छत्र क्यों नहीं है? दास सफेद चँवर आपके ऊपर क्यों नहीं डुलाते? सूत मागध और वन्दीगण प्रसन्न होकर क्यों मङ्गलगीत नहीं गाते? वेद-पारग ब्राह्मण मंत्र पढ़ कर मधु और दधि से क्यों आपका अभिषेक नहीं करते? अभिषेक हो चुकने पर प्रजा के प्रतिनिधि और नेता आपको पहुँचाने क्यों नहीं आये? सब से बढ़िया पुष्परथ, जिसमें बढ़िया चार घोड़े जोते जाते हैं, क्यों आपके आगे नहीं दौड़ता? सुदृश्य और सजे सजाये हाथी क्यों आपके साथ नहीं है? जिस समय अभिषेक की सारी तयारियाँ हो चुकी हैं, उस समय आपका मुखमण्डल क्यों मलिन हो रहा है? इस समय आपके मुखमण्डल पर वह मधुर हास्या क्यों दिखलाई नहीं पड़ता?

श्रीरामचन्द्र—जानकी! पूज्यपाद पिता ने मुझे चौदह वर्ष के लिये वन में रहने की आज्ञा दी है।

इतना कह कर श्रीराम ने धीरे धीरे सारा हाल कहा। फिर वे कहने लगे:-

श्रीरामचन्द्र-प्रिये! अब हम विजनवन में जाते हैं। इसीसे तुम्हें एक बार देखने के लिये यहाँ आया हूँ। जानकी! पिता की वात रखने के लिये मैं वन को जा रहे हैं-तुम किसी वात की चिन्ता मत करो। हम बन में रहेंगे, तुम यहाँ व्रतोपवास कर के समय व्यतीत करना। नित्य वड़े तड़के उठ कर और नहा धो कर, विधि के अनुसार देवाराधन कर चुकने पर, हमारे सर्वस्व पितृदेव के चरणों को प्रणाम करना। हमारी जननी वहुत दुखी है, उसकी ओर से हमें वड़ी चिन्ता है, तुम अपना धर्म समझ कर उसकी मन लगा कर सेवा करना। हमारी सभी माताएं सदा हमे खिला पिला कर हम पर स्नेह करती रहती हैं, तुम उन सबको प्रणाम किया करना। हमारे प्राणाधिक भरत और शत्रुघ्न को अपने निज भाई और पुत्र की तरह देखना। भरत इस वंश और देश के अधीश्वर हुए हैं-तुम ऐसा कोई काम न करना जिससे वे अप्रसन्न हों या वुरा मानें। सौजन्य और यत्न पूर्वक मनोरञ्जन करने पर, महीपाल प्रसन्न हुआ करते हैं। इसके विपरीत आचरण करने से अप्रसन्न होते हैं। राजा लोग, अपने औरस से उत्पन्न

अहितकर पुत्र तक को परित्याग कर देते हैं और सुयोग्य होने पर वाहिरी मनुष्य को भी अपना लिया करते हैं। इसीसे हे जानकी! हम तुम्हें समझाते हैं कि तुम राना भरत को प्रसन्न रख कर, यहाँ रहो। हम तो अब जाते हैं; किन्तु हमारा अनुरोध यह है कि हमने जो वातें तुमसे कही हैं, उनके विरुद्ध कोई भी काम मत करना।

जो जानकी एक घड़ी पहले, राजमहिषी वनने का सुख-स्वप्न देख रही थी—वे ही अपने पति को जटा बल्कल धारण कर, वन को जाते देख विस्मित हुईं। सीता जी यदि सामान्य स्त्री होतीं; तो आनन्द में सहसा निरानन्द का प्रवाह वहते देख, वे हताश हो, न जाने क्या कर वैठतीं? न मालूम वे कितना रोती धोतीं और कैकेयी को कितना कोसतीं! संभव था सीता यदि सामान्य स्त्री होती, तो श्रीरामचन्द्र जी को उल्टी पट्टी पढ़ा कर, दशरथ कैकेयी और भरत के विरुद्ध उभाड़तीं। यदि इतना न करतीं तो राज का वटवारा कराने को तो अवश्य ही खटपाटी ले कर पड़तीं। किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि सीता जी ऐसी नष्ट प्रकृति की नारी न थी। वे अपने आपको भूल गयी थीं और पति के साथ एक मन एक आत्मा हो गयी थीं। सीता जी राजमहिषी न होंगी—इस वात का उनके मन पर तिल भर भी प्रभाव न पड़ा। स्वामी पिता की वात रखने के लिये दण्डकारण्य को जा रहे हैं—यह जान कर उन्हें एक प्रकार की प्रसन्नता ही हुई। ऐसे समय पतिव्रता स्त्री को क्या करना चाहिये—यह वात सीता जी ने उसी क्षण निश्चित कर ली। उन्हें दुःख केवल इस वात का हुआ कि

श्रीरामचन्द्र जी उन्हें भरत की अधीनता में क्यों छोड़ना चाहते हैं? इतने दिनों साथ रह कर भी, श्रीरामचन्द्र उनकी प्रकृति और स्वभाव को न परख पाये—सीता जी को इसी बात का बड़ा दुःख है। इसीसे सीता जी ने श्रीरामचन्द्र जी के उपदेशों को सुन कर और कुछ खिसयानी सी हो कर कहा:—

सीता जी—नाथ! मुझसे आप ऐसे कठोर वचन क्यों कहते हैं? आपकी बातें सुन कर मुझे हँसी आती है। आपने जो एक बात कही है, वह शास्त्रज्ञ, महावीर राजकुमार के कहने योग्य कभी नहीं है। नाथ! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू—इन सबको अपने अपने कर्मानुसार सुख दुःख मिलते हैं। किन्तु एकमात्र भार्य्या ही स्वामी के भाग्य का भोग करने की अधिकारिणी है। अतः जिस समय आपको दण्डकारण्य-वास की आज्ञा मिली उसी समय मुझे भी वही आज्ञा मिली। देखो! औरों की बात दूर रही—स्त्री पति के विना, स्वयं अपना भी उद्धार नहीं कर सकती। इस लोक और परलोक में स्त्री के लिये उसका पति ही उसकी गति है।

चौपाई।

"प्राननाथ तुम्ह विनु जग माहीं।
मोकहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तइसिय नाथ पुरुष बिनु नारी॥"

राजभवनों से छुट कर और स्वर्ग सुख को परित्याग कर के भी पतिव्रता स्त्री स्वामी के चरणों की छाया का आश्रय लेती है। माता पिता ने भी मुझे यही उपदेश दिया है कि सम्पद विपद में कभी पति का साथ मत छोड़ना। अतएव यदि आप वन को जाते हैं; तो मैं मार्ग के काँटे बटोरती हुई आप के आगे आगे चलूँगी। आपका कहना मैंने नहीं माना, इसके लिये हे नाथ! आप कुछ न होना। मैंने कौन अपराध किया है, जिससे आप मुझे यहाँ छोड़ कर अकेले जाना चाहते हैं। मुझे त्रिलोक का ऐश्वर्य्य नहीं चाहिये। मुझे तो आपका साथ चाहिये। आपको छोड़ कर मुझे स्वर्ग सुख भी नहीं चाहिये।

दोहा।

"प्राननाथ करुनायतन,
सुन्दर सुखद सुजान॥
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुसुद-विधु,
सुरपुर नरक समान॥"

सीता जी बड़ी बुद्धिमती थी। पीछे श्रीरामचन्द्र जी उनको वन की भीषणता दिखला कर, उन्हें कहीं अयोध्या में

न छोड़ जाँय, इस लिये वे पहले ही से वन की शोभा देखने की उत्कण्ठा प्रकट करती हुई, कहने लगीं :—

सीता जी—प्राणनाथ ! मेरी बड़ी इच्छा है कि जिस वन में मृग और व्याघ्र रहते हैं, उस निविड निर्ज्जन वन में तपस्विनी बन कर नित्य आपकी चरण सेवा करूँ; जिन सरोवरों में कमल के फूल खिले हुए हैं, जहाँ हंस कारण्डव कलरव किया करते हैं, उनमें मैं नित्य स्नान किया करूँ; उस बानर सङ्कुल प्रदेश में, पिता के घर की तरह, क्लेश-रहित हो कर, आपके चरणों को पकड़ कर, आपकी आज्ञा पालन करूँ और निडर हो कर आपके साथ, शैल, सरोवर और नद नदियों की शोभा देख कर अपने को कृतार्थ करूँ। मैं जानती हूँ, आप मेरा सुख पूर्वक पालन कर सकेंगे—नहीं नहीं अकेली मुझी को क्यों, आप चाहे तो असंख्य मनुष्यों के पालन का भार उठा सकते हैं। पेट भरने के लिये वन में अनेक प्रकार के फल मूल हैं, मैं स्वादिष्ट भोजन करने के लिये आपको कष्ट नहीं दूँगी। आपके आगे आगे मैं चला करूँगी और जब आप भोजन कर चुकेंगे; तब मैं भोजन करूँगी। इसीसे मैं कहती हूँ कि मैं किसी प्रकार आपका साथ न छोड़ूँगी और आप भी मुझे कभी हताश न करेंगे।

यह सुन कर भी रामचन्द्र जी ने सीता जी को वन के कष्टों को समझा कर और धमकाते हुए अन्त में कहा:—

दोहा।

"सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करइ सिख मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवस होइ हित हानि॥"

श्रीरामचन्द्र जी की धमकी भरी बातें सुन कर, सीता जी सहम गयीं और नेत्रों में आँसू भर कर कहने लगीं:—

श्री सीता जी—नाथ! वन में जिन कष्टों के मिलने की बात आपने कही सो ठीक है; किन्तु आपके साथ रहने से सुरराज इन्द्र भी मेरा पराभव नहीं कर सकते। जब मैं आपके प्रति प्रेमवश और अपने मन से वनवास की इच्छा प्रकट कर रहीं हूँ; तब मेरे लिये वन के सारे क्लेश सुखद हो जायंगे। मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती। इस लिये आपके साथ वन को जाना मेरे लिये सब तरह से हितकर है। नाथ! जो पुरुष जितेन्द्रिय नहीं है, उसीको स्त्री के साथ वन में रहने से कष्ट हो सकता है, किन्तु आप तो निर्लोभी हैं, अतः आप क्यों आशङ्का करते हैं?

सीता जी की बातें सुन, श्रीरामचन्द्र जी मुसक्याये; किन्तु सीता जी की प्रार्थना को स्वीकार न किया। तब सीता

जी ने सरल युक्ति पथ को छोड़ कर और एक युक्ति पथ का अवलम्बन किया। वे कहने लगीं :—

सीता जी—पहले ! पिता के घर में मैंने ज्योतिषियों को कहते हुए सुना था कि मेरे भाग्य में वनो-वास लिखा है, इससे मैं और भी हठ कर रही हूँ। क्या तपस्वियों की वात भी झूठी हो सकती है? इसके अतिरिक्त मैं वहुत चाहती हूँ कि मैं आपके साथ वन में चलूँ। मैं तो इसके लिये वहुत दिनों से प्रार्थना कर रही हूँ और आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार भी कर चुके हैं। अतएव हे नाथ ! इस दुःखिनी को अपने साथ लेते चलिये।

इस पर भी श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी की बात न मानी। तव सीता जी श्रीरामचन्द्र जी की हँसी कर के कहने लगीं :—

सीता जी—नाथ ! यदि मेरे पिता को यह बात विदित होती कि आप डील डौल ही के पुरुष हैं ; किन्तु आपका स्वभाव स्त्री जैसा है, तो मुझे कभी आपको न सौंपते। लोग कहा करते हैं कि राम का जैसा तेज है, वैसा सूर्य्य का भी नहीं है। उनकी यह बात इस समय झूठी जान पड़ती है। आप इस समय इतने उदास क्यों हैं ? और क्यों अपनी अनन्य-परायणा पत्नी को छोड़ जाने को तयार हैं ? मैंने कभी भी कुलकलङ्किनी स्त्री की तरह

आपको छोड़ किसी दूसरे पुरुष की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। इसीसे मैं कहती हूँ कि मैं अवश्य आपके साथ चलूँगी ।

श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी से कहा था कि तुम राजा भरत के आश्रय में रहो। परपुरुष के आश्रय में रहने की बात सीता न सह सकीं। उनके शरीर में आग सी लग गयी, वे श्रीराम से बोलीं :—

सीता—नाथ! जिसका आप सदा हित चाहते रहें-जिसके कारण आप राज से वञ्चित किये गये, उसी भरत के वशवर्त्ती होकर रहने की बात को मैं कभी नहीं मानूँगी। मैं बार बार कहती हूँ कि मैं आपका साथ कभी न छोड़ूँगी। आपके साथ वन में अथवा स्वर्ग में, कहीं भी जाने में मुझे किसी प्रकार का सङ्कोच न होगा। जिस समय मैं आपके पीछे पीछे जाऊँगी, उस समय मार्ग मुझे कोमलशय्या की तरह सुखदायी होगा। मुझे मार्ग चलने की थकावट ज़रा भी न व्यापेगी। कुश, काँस, आदि काँटेदार वृक्ष, अथवा झाँड़, मुझे रुई और मृगचर्म की तरह कोमल जान पड़ेंगे। अन्धड़ चलने पर मेरे शरीर पर जो धूल छा जायगी वह शीतल चन्दन की तरह सुखावह होगी। जब मैं वन में तृणश्यामल, भूमिशय्या पर शयन करूँगी, उस समय गुदगुदे गद्दे तुच्छ प्रतीत होने

लगेंगे । फल मूल, पत्र थोड़े हों या बहुत, जितने आप लाकर सामने रख देंगे, मैं उनको अमृत समझ कर परितृप्त हो जाऊंगी और वसन्तादि ऋतुओं के फल फूलों को भोग कर सुखी होऊंगी ।

स्त्रियाँ मयके जाने के लिये बीच बीच में स्वामी और अपने घर के अन्य बड़े बूढ़ों को प्रायः बहुत तङ्ग किया करती हैं । राम यदि सीता को वन में ले गये, तो सीता अपने माता पिता के पास जाने के लिये कहीं उद्विग्न न हों—और इस बहाने से कहीं रामचन्द्र सीता जी को छोड़ न जाँय—यह सोच सीता जी पहले ही से इस बात की भी सफाई किये डालती हैं । वे कहती हैं :—

सीता जी—नाथ ! मैं माता पिता को देखने के लिये कभी उद्विग्न न होऊंगी । घर की स्वप्न में भी याद न करूँगी । इन सब को भूल कर, कभी आपको किसी प्रकार का कष्ट न दूँगी । मुझे आप अपने साथ लेते चलिये । आप अच्छी तरह जान लें कि आपका सहवास मेरे लिये स्वर्ग और आपका विछोह ही मेरे लिये नरक है । अधिक क्या कहूँ—नाथ ! वनवास में मुझे कुछ भी दोष नहीं दिखलाई पड़ता । यदि इस पर भी आप मुझे अपने साथ न ले चलेंगे तो :—

दोहा।

ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान।
तौ प्रभु-विषम-वियोग दुःख, सहिहहिं पाँवर प्रान॥

मैं विष खा कर प्राण दे दूँगी—किन्तु विपक्षी भरत के आश्रय में न रहूँगी। चौदह वर्ष तो बहुत होते हैं, मैं एक घड़ी भी आपके वियोग की वेदना नहीं सह सकती।

यह कह कर सीता जी श्रीरामचन्द्र के गले में हाथ डाल कर, रोने लगीं। यह देख श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें धीरज बंधा कर कहा:—

श्रीरामचन्द्र—देवि! तुम्हें कष्ट देकर हम स्वर्ग में भी जाना नहीं चाहते। हम कहीं भी रहें, हमें किसी का डर नहीं। तुम चाहती क्या हो सो अभी तक हम नहीं जान पाये थे। इसीसे तुम सब प्रकार से रक्षा करने योग्य होने पर भी, हम तुम्हें अपने साथ ले जाना नहीं चाहते थे; किन्तु अब हम समझ गये कि तुम यहाँ रहना नहीं चाहतीं, हमारे साथ वन में रहना चाहती हो और उसके लिये तुम दृढ़ संकल्प कर चुकी हो; अतः तुम हमारे साथ चलो। अब हम तुमसे कहते हैं कि जो हमारा धर्म है, तुम भी उसके साधन में प्रवृत्त होओ। प्रिये! तुमने जो सिद्धान्त निश्चित किया है, वह सब प्रकार उत्तम और हमारे वंश की प्रथा के

अनुरूप ही हैं। अब तुम अपना सारा धन रत्न, वस्त्र भूषण, खेल खिलौने ब्राह्मण और दरिद्रों को बाँट दो और आज ही हमारे साथ चलने को तयार हो जाओ।

प्रेम की जय हुई। सीता जी के आनन्द की सीमा न रही। मेघ से निकलने पर जिस प्रकार चन्द्रमा शोभायमान होता है, वैसे ही स्वामी के साथ वन को जाने की बात निश्चित होते ही—सीता की भी वही शोभा हुई। सीता जी ने उसी क्षण तिल भर भी उदासीन हुए बिना ही धन, गहना कपड़ा आदि सारी वस्तुएँ दे डालीं।

अभी तक लक्ष्मण खड़खड़े चुपचाप भाई भोजाई की बात-चीत सुन रहे थे। जब उन्होंने देखा कि भइया ने वन जाने की बात मन में पक्की कर ली है, तब वे हाथ जोड़ कर बोले:—

लक्ष्मण—प्रभो! यदि वनवास करना ही आपने ठान लिया है, तो अपने इस पुराने अनुचर को भी अपने साथ लेते चलिये।

श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मण को बहुत समझाया बुझाया और साथ न चलने के लिये वर्जा भी, किन्तु लक्ष्मण जी न माने। अन्त में तीनों ने वन जाने का संकल्प कर अपने पास की सारी सम्पत्ति दीन दुःखिया को दे डाली।

जिन सीता को किसी ने कभी आज तक देखा भी न था, उन्हीं सीता को पैदल जाते देख, सब लोग हाहाकार करने लगे और कैकेयी तथा दशरथ की निन्दा करने लगे। दशरथ, राम सीता और लक्ष्मण को देख, उच्चैःस्वर से विलाप करने लगे और कौशल्या आदि रानियाँ बहुत दुःखी हुईं। श्रीरामचन्द्र

जी दशरथ को प्रणाम कर के वन जाने के लिये उनके पास गये। दशरथ ने नेत्रों में आँसू भर कर, पुत्र को विदा किया। दुष्टा कैकेयी ने राम लक्ष्मण सीता के पहिरने के लिये चीर वस्त्र दिये। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण ने उसी जगह उन वस्त्रों को पहिना और तपस्वियों जैसा वेश धारण किया। सीधी साधी स्वभाव वाली सीता, उन कपड़ों को पहिन न सकी; अतः उसने उन्हें अपनी भगुवा रङ्ग की साड़ी के ऊपर लपेट लिये। उस समय वसिष्ठ आदि बड़े बूढ़ों ने उन्हें वैसा करने से रोका भी। दशरथ ने वर्षों के हिसाब से सीता के पहिनने के लिये कपड़े गहने दिये। अनन्तर तीनों जन, अपने बड़े बूढ़ों से जाने की आज्ञा माँगने लगे। कौशल्या देवी ने सीता के सिर को सूँघ कर और उसे गले लगा कर कहाः—

कौशल्या—बेटी! जो नारी प्रिय जनों की आदर-भाजन हो कर भी—विपद में स्वामी का साथ छोड़ती है, वह इस लोक में असती कहलाती है। ऐसी असतियों का स्वभाव होता है कि सम्पद के समय तो वे अपने स्वामी के सुख भोग की साथिन बनती हैं; किन्तु दुःख के समय वे अपने स्वामी को अनेक प्रकार के केवल दोष ही नहीं लगातीं; किन्तु उसे छोड़ भी देती हैं। वे सदा झूठ बोलती और ज़रा ज़रा सी बात के लिये पति को दोषी ठहराती हैं। ऐसी स्त्रियाँ बड़े चञ्चल स्वभाव वाली होती हैं। वे अपने कुल की मर्य्यादा का तिल भर भी विचार नहीं करतीं। कपड़े गहने से भी वश में नहीं

रहतीं—वे कृतघ्न होकर धर्म ज्ञान को तुच्छ समझ बैठती हैं। यदि कोई उन्हें उनके दोष भी सुझावे, तो वे अपने दोषों को नहीं मानतीं। किन्तु जो बड़े बूढ़ों के उपदेशानुसार चलती हैं, अपने कुल की मर्य्यादा की रक्षा करती हैं, जो सत्य बोलती हैं और जिनका शुद्ध स्वभाव है—वे ही सच्ची सती, अपने पति को अपनी एक मात्र गति जानती हैं। इस घड़ी यद्यपि हमारे राम निर्वासित किये गये हैं; तथापि तुम इनका कभी किसी प्रकार से अनादर मत करना। चाहे यह दरिद्र हों, चाहे सम्पन्न—तुम इन को सदा देवतुल्य समझना।

जानकी (हाथ जोड़ कर)—आर्य्यें! आपने मुझे जो आज्ञा दी है—मैं उसको रत्ती रत्ती पालन करूँगी। स्त्री को अपने स्वामी के साथ कैसे बर्ताव करना चाहिये; यह मैं सुन चुकी हूँ और जानती हूँ। आप मुझे असती न जानना। जैसे चन्द्रमा से उसकी किरण प्रथक नहीं वैसे ही धर्म से मैं कभी प्रथक न होऊंगी। माता पिता और पुत्र परिमित वस्तु दे सकते हैं, पर अपरिमित वस्तु को देने वाले केवल पति को छोड़, दूसरा कोई नहीं है। इससे पति का कौन आदर न करेगा। आर्य्यें! मैं क्यों पति की अवमानना करने लगी? पति ही तो मेरा परम देवता है।

कौशल्या जी सीता जी की बातें सुन, आनन्द के आँसू बहाने लगीं। अनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता, सब से आज्ञा माँग कर, रथ पर सवार हुए। घरघराता हुआ रथ आगे बढ़ा। राजधानी में बड़ा हाहाकार मच गया। जानकी और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी को वन जाते देख कर, और अपने को अनाथ जान कर, नगर-निवासी बालक, वृद्ध, युवक, प्रौढ़, ब्राह्मण, शूद्र, सैन्य, सामन्त—सभी हाहाकार करते हुए, रथ के पीछे पीछे दौड़ने लगे।

छठवाँ अध्याय।

श्रीरामचन्द्र जी ने सन्तप्त हृदय से एक वार रथ के पीछे की ओर घूम कर देखा। वे देखते क्या है कि अयोध्यावासी शोक से व्याकुल उनके रथ के पीछे दौड़े चले आ रहे हैं। श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें वहुत कुछ समझा बुझा कर लौटाना चाहा—किन्तु उन लोगों ने उनकी एक भी वात न सुनी। जहाँ राम जाँयगे—वहीं वे भी जाँयगे। रामशून्य अयोध्या नगरी में अब वे एक क्षण भी नहीं रहेंगे। प्रजा का अपने ऊपर ऐसा अनुराग देख, श्रीरामचन्द्र जी से न रहा गया। उनके नेत्रों से अश्रु निकलने लगे। उन्होंने उन लोगों से तो कुछ भी न कहा, किन्तु सुमन्त से घोड़ों को तेज़ी के साथ चलाने के लिये कहा। किन्तु इससे भी कुछ न हुआ। औरों की वात दूर रही—बूढ़े तपस्वी ब्राह्मण हाहाकार करते हुए, राम के पीछे दौड़े और बुढ़ापे के कारण जब उनसे बहुत दूर तक न दौड़ा गया, तब वे करुणस्वर से विलाप करने लगे। यह देख दया-परवश हो, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता समेत रथ से उतर पड़े और उन लोगों के साथ पैदल वन की ओर चलने लगे। धीरे धीरे वह दिन पूरा हुआ, सब लोग तमसा नदी के तट पर पहुँचे। सुमंत्र ने घोड़ों को खोला और उनके सामने घास डाली। उधर सूर्य्य के अस्त होते ही धीरे धीरे अन्ध-

कार का छोड़, कोई भी वस्तु दिखलाई न पड़ने लगी। पक्षी चिहुचिहाते, वृक्षों की डालियों पर बसेरा लेने लगे। थके मान्दे अयोध्यावासी भी एक एक कर के नदी के तट पर पहुँचे और श्रीरामचन्द्र जी को घेर कर बैठ गये। फिर वे धीरे धीरे वहीं भूमि पर लेट कर, घोर निद्रा में सो गये। श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता सहित, वृद्ध पिता और शोकाकुल जननी तथा अनुरक्त अयोध्या-वासियों के अनुराग की चर्चा करते हुए अत्यन्त सन्तप्त हुए। फिर सन्ध्या पूजा कर के और उमड़ते हुए दुःख के वेग को रोक कर, श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा:—

श्रीरामचन्द्र—भाई! वनवास की आज यह पहली रात है, आज की रात हम लोग यहीं व्यतीत करेंगे। यहाँ वनैले फल मूल भी बहुत हैं। किन्तु मैंने तो संकल्प कर लिया है कि आज की रात केवल जलपान कर के बिताऊँगा।

सुमंत्र और लक्ष्मण ने मिल कर, श्रीरामचन्द्र जी के सोने के लिये तृण की शय्या बनायी। तब सीता समेत श्रीरामचन्द्र जी उस शय्या पर सो रहे और लक्ष्मण जी सुमंत्र के साथ श्रीरामचन्द्र जी के गुणों की आलोचना प्रत्यालोचना करते हुए रात बिताने लगे।

श्रीरामचन्द्र जी ने बड़े तड़के उठ कर और अयोध्या वासियों को घोर निद्रा में सोते हुए छोड़ कर, वहाँ से लक्ष्मण सीता समेत प्रस्थान किया। थोड़ी ही देर में रथ वहाँ से बहुत दूर निकल गया। थोड़ी देर बाद, कौशलराज्य की अन्तिम

सीमा वाली वेदश्रुति नदी को पार कर, वे दक्षिण की ओर मुड़े। वहाँ से आगे बढ़ कर, वे गोमती और स्यन्दिका नदी पार कर के शृङ्गवेरपुर में पहुँचे। वहाँ से कुछ दूर आगे, उन्हें पवित्र सलिला जान्हवी मिली। श्रीरामचन्द्र जी सुरम्य-तट शोभिनी कलनादिनी जान्हवी की विचित्र शोभा दिखा रहे थे कि इतने में उन्हें एक इङ्गुदी का वृक्ष दिखलाई पड़ा। उसी वृक्ष के नीचे रह कर, उन्होंने दूसरी रात विताने का निश्चय किया। रथ वहीं खोल दिया गया।

गङ्गा के तट पर गुह नामक मल्लाहों का एक राजा रहता था। वह श्रीरामचन्द्र जी की लड़काई का सखा था। श्रीरामचन्द्र आज उसकी अमलदारी में आये हैं—यह सुन वह फल मूल ले और अपने बड़े बूढ़ों को आगे कर, श्रीरामचन्द्र जी के स्वागत के लिये आगे बढ़ा। दोनों मित्र आपस में एक दूसरे के गले मिले और एक दूसरे ने से कुशल प्रश्न किया। गुह ने राम का बड़ा सत्कार किया; किन्तु तापस-व्रत पालन करने की बात कह कर, श्रीरामचन्द्र ने घोड़ों के रातिव को छोड़, और कुछ भी न लिया। जब श्रीरामचन्द्र जी सन्ध्यावन्दन कर चुके, तब लक्ष्मण जी उनके लिये सुशीतल जल भर लाये। तब श्रीरामचन्द्र जी ने जलपान कर के सीता समेत भूमि शय्या पर शयन किया। लक्ष्मण ने भी उन दोनों के पैर धो कर चरणामृत लिया और उस पेड़ के नीचे अपना आसन जमाया।

लक्ष्मण जी भाई की रखवाली के लिये रात भर जागते रहे, भाई में ऐसा सच्चा अनुराग देख, गुह लक्ष्मण जी की भ्रातृभक्ति की प्रशंसा करने लगा। गुह ने लक्ष्मण से बहु-

तेरा कहा कि तुम कुछ देर के लिये आराम कर लो, किन्तु लक्ष्मण जी राज़ी न हुए। वे सन्तप्त हृदय से कहने लगे—"देखो, यह रघुकुल-तिलक राम, सीता समेत पृथिवी पर पड़े हैं। भला ऐसी दशा देख कर, मुझे नींद कैसे आ सकती है और भूख क्यों लग सकती है?" यह कह कर वे अयोध्या की दशा का सारा हाल कहने लगे। इस प्रकार परिताप और विलाप करते करते रात बीत गयी और सबेरा हो गया। जाग कर, श्रीरामचन्द्र जी गङ्गा पार होने की चिन्ता में बैठे ही थे कि इतने में निषादराज एक नाव लेकर आ पहुँचे।

श्रीरामचन्द्र, सीता जी और लक्ष्मण समेत उस नाव पर चढ़ने को प्रस्तुत हुए और सुमंत्र को वहाँ से विदा कर के, उनसे बोले:—

श्रीराम—सुमंत्र! तुम शीघ्र लौट कर, महाराज के पास जाओ। अब हमें रथ की आवश्यकता नहीं है। यहाँ से आगे अब हम पैदल जाँयगे।

स्वामिभक्त सुमंत्र श्रीरामचन्द्र जी की ये बातें सुन, रोने लगे। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें बहुत समझाया और जनक जननी एवं बड़े बूढ़ों को प्रणाम और भरत शत्रुघ्न आदि छोटों को मङ्गलानुशासन कहला भेजा। सुमंत्र को विदा कर, दोनों भाई वट के दूध से मस्तक पर जटा धारण कर, ऋषियों की तरह शोभायुक्त हुए। अनन्तर गुह से विदा माँग और सीता लक्ष्मण समेत नाव पर सवार होकर, कुछ ही देर बाद वे गङ्गा के उस पार पहुँच गये।

वहाँ पहुँच कर, श्रीरामचन्द्र जी घोर विजन वन में प्रवेश करने की तैयारियाँ करने लगे। उनके साथ सीता हैं और

उनके एकमात्र सहायक लक्ष्मण हैं। आगे चल कर, कोई विपत्ति न पड़े, इससे श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को सावधान कर के कहा—"भाई ! सजन या विजन कहीं भी हो-सीता की रक्षा में सदा सावधान रहना। तुम सब से आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे चले और मैं तुम दोनों के पीछे चलूँगा और तुम्हारी दोनों की रक्षा करूँगा। अब से हम लोगों को बड़े बड़े दुष्कर कार्य्य करने हैं, इससे परस्पर रक्षा की बड़ी आवश्यकता है। जिस स्थान में मनुष्य का आना जाना नहीं होता, जहाँ क्षेत्र अथवा उद्यान भी नहीं दिखलाई पड़ते और जहाँ ऊंची नीची भूमि है, जानकी आज उसी वन में प्रवेश करेगी—और वनवास में कैसे कैसे कष्ट सहने पड़ते हैं—इस बात का उसे आज ही अनुभव हो जायगा।

श्रीरामचन्द्र जी की आशङ्का और सतर्कता भरी बातें सुन, अरण्यवास कैसा भयानक है, जानकी को इसका अवश्य ही कुछ आभास मिला; किन्तु प्रथमतः और प्रधानतः उनका अकृत्तिम प्रेम और अनुराग, दूसरे स्वामी के बलवीर्य में अटल विश्वास और तीसरे प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की लालसा—इन तीन कारणों से सीता के मन में वनवास सम्भावित किसी प्रकार का भी त्रास उत्पन्न नहीं हुआ। प्रत्युत आगे चल कर हमारी पाठिका और पाठक देखेंगे कि सीता जी ने उस गभीर अरण्य को भी अपने घर जैसा आङ्गन और पुष्पोद्यान बना लिया था।

जब तक राम लक्ष्मण सीता दिखलाई पड़े; तब तक तो सुमंत्र उन्हें खड़े देखते रहे, किन्तु जब वे दृष्टि से बाहर हुए;

तव कुछ क्षणों के लिये वे निश्चेष्टभाव से खड़े रहे। पीछे आँसू बहाते और रीता रथ ले कर सुमंत्र अयोध्या को लौट गये।

सन्ध्या हो गयी है। राम लक्ष्मण सीता के साथ आज न तो सुमंत्र एवं गुह हैं और न अयोध्यावासी प्रजा है। वन में आज उनके लिये यह पहली रात्रि है। आज ही से राम लक्ष्मण को आलस्य छोड़ कर, रात भर जागना पड़ेगा, अपने हाथ से तृणशय्या बनानी पड़ेगी और सीता की रखवाली और हर प्रकार की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ेगी। इसीसे रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा:—

श्रीरामचन्द्र—भाई! अब नगर का स्मरण कर, उत्कण्ठित मत होना।

यद्यपि श्रीरामचन्द्र ने उत्कण्ठा मिटाने के लिये लक्ष्मण को उपदेश दिया, तथापि वे स्वयं भूमिशय्या पर शयन करते समय, अपने मानसिक उद्वेग को न रोक सके। ठीक ही है, क्योंकि रामचन्द्र जी ने यह महा कठोर व्रत केवल पिता की बात रखने के लिये ही धारण किया था। जन्म ग्रहण करने के दिन से कुपुत्र की तरह उन्होंने जननी को बड़ा कष्ट दिया है और पिता के शोक का भी वे ही कारण हैं—इन बातों को सोच कर, श्रीरामचन्द्र बहुत सन्तप्त हुए। उनके नेत्रों से अविराम अश्रुधारा बहने लगी। यह देख लक्ष्मण और सीता, दोनों कातर हुए। अन्त में सुधीर लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र को समझा बुझा कर, शान्त किया। श्रीरामचन्द्र ने छोटे भाई के सुमधुर वाक्यों से शान्ति लाभ कर और उत्साहित होकर, उस जनरहित वन में रात बितायी।

अगले दिन सवेरे तीनों ने उठ कर, गङ्गा यमुना के सङ्गम की राह पकड़ी। सीता जी तो वन की रमणीयता देख प्रसन्न होती थीं, किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के मुखमण्डल पर उदासी छाई हुई थी। राजबाला और राजवधू सीता को एकमात्र पतिप्रेम की वशवर्त्तिनी होकर, कण्टकपूर्ण, पथरीली एवं ऊंची नीची वन की पगडण्डियाँ कुसुमाकीर्ण पथ की तरह जान पड़ने लगीं। इस प्रकार सारे दिन चल कर, वे तीनों सन्ध्या के समय प्रयाग के समीप पहुँचे और भरद्वाज के आश्रम की ओर गये। आश्रम में पहुँच कर, तीनों ने महर्षि भरद्वाज को प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। भरद्वाज ने बड़ा आदर सत्कार किया। महर्षि ने उन्हें भोजन के लिये सुस्वादु मीठे फल मूल और पीने को मीठा ठण्डा जल दिया और उनको एक सुन्दर स्थान में ठहराया। अनन्तर महर्षि अन्य अनेक ऋषियों समेत श्रीराम को घेर कर बैठ गये और उनके साथ अनेक विषयों पर वार्त्तालाप करते रहे। फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी से अनुरोध पूर्वक यह भी कहा कि आप इसी आश्रम में रह कर, वनोवास की अवधि पूरी कीजिये। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकृत न किया। उन्होंने कहा:—

श्रीरामचन्द्र—भगवन्! जानकी जहाँ सुख पूर्वक रह सके, आप हमें कोई ऐसा जनशून्य आश्रम बतला दीजिये।

यह सुन भरद्वाज ने विचार कर, वहाँ से दस कोस के अन्तर पर, चित्रकूट नामक पर्वत बतला दिया।

वह रात महर्षि के आश्रम में विता कर, सवेरा होते ही तीनों ने महर्षि से विदा माँगी और चित्रकूट का रास्ता पकड़ा। थोड़ी दूर चल कर, वे यमुनातट पर पहुँचे। पार उतारने के लिये, लक्ष्मण ने सूखी लकड़ियों को जोड़ बटोर कर, लता की रस्सी से उन्हें बाँध कर, एक वेड़ा तयार किया। उस पर सवार होकर तीनों यमुना के दक्षिण तट पर पहुँचे। गुह की नाव पर और बेड़े पर सवार हो कर, जब वे तीनों, यमुना के बीच में पहुँचे ; तब सीता जी ने हाथ जोड़ कर, कहा:—

सीता—देवि! कृपा कर, इन राजकुमारों की लाज रखो। ये चौदह वर्ष वन में विता कर, यदि निर्विघ्न लौट आवेंगे, तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी। हे देवि! मैं तुमको प्रणाम करती हूँ।

यमुना पार कर, कुछ दूर आगे बढ़ कर, जानकी ने श्याम नामक एक बड़ा ऊंचा वट वृक्ष देखा। उस वृक्ष की डालियाँ बहुत दूर तक फैली हुई थीं। उस वृक्ष को प्रणाम कर, सीता जी ने कहा:—

सीता—तरुवर! हमारे पति का व्रत निर्विघ्न पूरा करो। मैं लौट कर, फिर कौशल्या और सुमित्रा को देखूँ। मैं तुमको नमस्कार करती हूँ।

पुण्यतोया गङ्गा यमुना और विशाल वट वृक्ष से ऐसी सरल प्रार्थना, सती की सरलता की परिचायक है। वे अपने स्वामी की भलाई के लिये कितनी उत्सुक थीं—यह बात

इससे स्पष्ट प्रतीत होती है। उस वृक्ष से कुछ दूर आगे बढ़ कर, उन्हें एक मनोहर कानन दिखलाई पड़ा। रामचन्द्र, सीता के पुष्पानुराग को भली भाँति जानते थे। इस लिये उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा—"भाई! देखो सीता जौनसा फूल कहे, वही तुम ला देना।" सीता जी ने अनेक ऐसे वृक्ष, फूल आदि देखे, जो पहले कभी नहीं देखे थे। उनकी इच्छानुसार लक्ष्मण तुरन्त फूल आदि ला दिया करते थे। इस प्रकार सारा दिन उन तीनों ने उस वन में घूम फिर कर बिताया। राम लक्ष्मण ने एक मृग को मार कर और फल मूलादि ला कर, क्षुधा मिटाई और एक नदी के तट पर तीनों ने रात बितायी।

अगले दिन सवेरा होते ही, वे तीनों थोड़ी दूर चल कर, चित्रकूट के समीप जा पहुँचे। चित्रकूट पर्वत की शोभा का कहना ही क्या था? अनेक प्रकार के वृक्ष और लताजाल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। फल मूल का पूँछना ही क्या था। असंख्य अग्निकल्प ऋषि उस मनोरम प्रदेश में कुटी बना कर रहते थे। वहाँ कहीं नदी बहती थी, कहीं गिरि गुहा थी, और कहीं तृणगुल्म-समाच्छादित समतल खेत थे। कहीं पर सुगन्धयुक्त फूल महक रहे थे, कहीं पर भौरों और रङ्गबिरङ्गी तितलियों के झुण्ड फूलों पर मड़रा रहे थे। रामचन्द्र ने वसन्त ऋतु में वनयात्रा की थी। उस समय टेसू के फूले हुए लाल फूलों से ऐसा जान पड़ता था कि मानों वन में आग लगी है। कहीं कोयल कूक रही थी—कहीं मोर बोल रहे थे, कहीं टिट्टिभ और कहीं दात्यूह पक्षी कलरव कर रहे थे। हिरन हिरनियाँ देखते ही बिजली की तरह छलाङ्ग मार कर, दूर निकल जाती थीं। इस प्रकार की वन की शोभा देखते हुए

वे तीनों महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में पहुँचे। महर्षि वाल्मीकि उन तीनों को देख, बहुत प्रसन्न हुए और उनका भली भाँति अतिथि-सत्कार किया।

जिस आदि कवि की अमृतमयी लेखनी से यह पवित्र रामकथा लिखी गयी और जो आज लाखों वर्ष पीछे भी भारतवासियों के कानों में अमृत की वर्षा कर रहे हैं और जो दुर्बल चेता मानव जाति को साधुता, सत्यपरायणता और पवित्रता की ओर अग्रसर कर, इस लोक में धर्म रूपी धार को अप्रतिहत रूप से प्रवाहित कर रहे हैं, उन्हीं कविकुल-चूड़ामणि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में श्रीरामचन्द्र जी के प्रथम पदार्पण की यह कथा, मन में कैसी सुगम्भीर भाव राशि को उत्पन्न करती है। अभी तक महर्षि ने न तो क्रौञ्चवध देख कर और शोक से सन्तापित होकर श्लोक उच्चारण किया है और न अभी तक उन्होंने रामायण की रचना ही की है। उन्हें अभी तक इस बात की स्वप्न में भी आशा नहीं है कि वे एक दिन इन सत्यव्रत अरण्यचारी राजकुमारों के अलौकिक गुणों को वर्णन कर, इस संसार में अपनी अतुल कीर्त्ति स्थापन कर सकेंगे। वे ही महर्षि वाल्मीकि उस समय रामचन्द्र के मुख से असाधारण पितृभक्ति की कथा सुन, आश्चर्य मिश्रित अपूर्व आनन्द के रस में निमग्न हो गये। अनन्तर उन्होंने उन तीनों का उचित रीति से अतिथि-सत्कार किया।

उस रमणीय वन में रामचन्द्र की वास करने की इच्छा हुई। उन्होंने लकड़ी की एक कुटी बनाने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा दी। वीरवर लक्ष्मण ने भी श्रीरामचन्द्र की आज्ञा उसी समय पालन की। चारों ओर लकड़ी से घेर कर और ऊपर

पलाश ताल आदि की पत्तियों से उसे छाकर वहाँ एक कुटी तैयार की। उस कुटी के मध्य में एक वेदी भी बना दी गयी थी। कुटी बहुत सुन्दर बनी है, यह देख श्रीरामचन्द्र जी ने विधि-वत् यज्ञ यागादि कर के, उस कुटी में प्रवेश किया, तथा सीता जी के सहवास और लक्ष्मण की सेवा से प्रसन्नता पूर्वक वे वहाँ रहने लगे।

वाल्मीकि के आश्रम तथा उसके समीपस्थ वन उपवन आदि की अकृत्रिम शोभा देख, श्रीसीता जी आनन्दित होती थीं। वे चित्रकूट के नाना स्थानों में पति के साथ घूमती और पति का प्रेम-प्रसन्न-मुख देख कर, स्वर्ग सुख को भी तुच्छ समझती थीं। हरे हरे वृक्षों से सुशोभित वन अथवा पवित्र आश्रम ही, मानों उनका राजमहल था। सीता जी वाल्मीकि जी के आश्रम के चारों ओर पति के साथ आनन्द पूर्वक घूमती थीं। उन्होंने उस समय इसका स्वप्न भी नहीं देखा था कि इसी रमणीय आश्रम में एक दिन अपने प्रियपति के वियोग में उन्हें विलाप करना पड़ेगा।

श्रीरामचन्द्र जी को यहाँ चित्रकूट में अपनी प्रियतमा पत्नी एवं अनुगत भ्राता के साथ आनन्द पूर्वक वास करने दो; तब तक चलो पाठक पाठकाएं! हम तुम श्रीरामचन्द्र के विरह में व्याकुल अयोध्या नगरी की दशा को देख आवें।

खाली रथ लिये सुमंत्र के राजधानी में पहुँचते ही रामचन्द्र के वनवास को सत्य समझ कर, लोगों के दुःखों का आरपार न रहा। महाराज दशरथ रोते रोते उन्मत्त हो गये। उन्होंने दुःखित रानियों को विशेष कर, कौशल्या को सम्बोधन करके कहा—"अब हमारा मरण काल आ पहुँचा, रामचन्द्र को विना

देखे, अब हमारे प्राण नहीं रह सकते हैं।" यह सुन अपने चित्त को स्थिर कर के कौशल्या महाराज को समझाने लगीं; परन्तु फल कुछ न हुआ। महाराज दशरथ रामचन्द्र जी के वन जाने के छठवें दिन रात्रि को स्वर्गगामी हुए। उनकी शय्या के पास रानियाँ सोयी थीं, परन्तु उनकी मृत्यु किसी को मालूम न हुई।

प्रातःकाल हुआ, उस समय की रीति के अनुसार वन्दी मागध गायक आदि स्तुति करने वाले राजभवन में आकर अपनी परिपाटी के अनुसार उच्चस्वर से राजा दशरथ को आशीर्वाद देते और उनकी स्तुति करने लगे। पखावजी आदि पहले के राजाओं के उत्तम उत्तम कार्यों का वर्णन और करतल-ध्वनि करने लगे। उनकी करतल-ध्वनि से पक्षीगण जाग उठे और अपने कलरव से इनके कार्यों के सहायक बन गये। पवित्र स्थान और तीर्थों का नाम-कीर्त्तन आरम्भ हुआ और उधर वीणा बजने लगी। दासी और दास अपने अपने कामों पर उपस्थित हुए। कोई चन्दन से सुगन्धित जल घड़ों में ले कर उपस्थित हुआ। कुमारी और साध्वी स्त्रियाँ मङ्गलार्थ दान दी जाने वाली गौएँ, गङ्गाजल, पहिनने के कपड़े और गहने आदि ले कर उपस्थित हुईं। प्रातःकाल महाराज को जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती थी; वे सभी वस्तु ठीक कर के रखी गयीं; किन्तु महाराज की निद्रा टूटने का समय होने पर भी वे अभी न जागे। उत्सुकता के कारण महारानी कौशल्या आदि ने महाराज के समीप जा कर, उनका गात्र स्पर्श किया और भय तथा दुःख के साथ उन लोगों ने देखा कि महाराज के

शरीर से प्राणवायु निकल गया है। विपत पर विपत पड़ी। क्षणमात्र में वह राजभवन भयानक हो गया। चारों ओर शोक छा गया। नगरवासी दुःख से व्याकुल होकर अपने कामों को भूल गये और जहाँ के तहाँ म्लान मुख पड़े रहे। राम लक्ष्मण वन को भेज दिये गये हैं, शत्रुघ्न के साथ भरत भी अपने मामा के यहाँ गये हुए हैं। उन्हें अयोध्या के इन दो वज्रपातों की कुछ भी सुध नहीं है। महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पादन करने के लिये कोई भी पुत्र उपस्थित नहीं है। इसी कारण वशिष्ठ आदि महर्षियों ने महाराज के मृतशरीर को तेल में डुबा कर रखने के लिये, आज्ञा दी और भरत को उस समय अयोध्या में ले आने के लिये शीघ्रगामी दूत भेजे।

दूतों ने केकय की राजधानी में जा कर, शीघ्र अयोध्या चलने के लिये भरत से निवेदन किया, परन्तु अयोध्या का कुछ भी हाल उन लोगों ने भरत को नहीं बतलाया। पहाड़ी रास्ते डाँकते हुए, वे सातवें दिन अयोध्या आ पहुँचे। वे अपने शीघ्र बुलाये जाने के कारण, उत्कण्ठित तो थे ही, दूर ही से अयोध्या को श्रीरहित देख, व्यकुल हो गये। भरत का मुँह सूखता जाता था, चित्त व्याकुल होता जाता था। सब से पहले वे अपनी माता के घर में गये और उन्होंने सब से पहले पिता और राम लक्ष्मण आदि प्रियजनों का समाचार पूँछा। बहुत दिनों के बाद अपने पिता के घर से आये भरत को देख, कैकेयी ने पहले मयके ही का समाचार पूँछा और पीछे प्रसन्नता पूर्वक रामचन्द्र के वियोग से दशरथ का मरना बतलाया और पुनः भरत को प्रसन्न करने के लिये रामचन्द्र का वनवास

और भरत को राजगद्दी मिलने का वृत्तान्त कह सुनाया। कुमार भरत इन दुःख-संवादों को सुन कर, इकाइक मूर्च्छित हो गये और भूमि पर गिर पड़े। बहुत देर के बाद मूर्च्छा नष्ट होने पर शोक और क्रोध से वे कभी विलाप करते और कभी कैकेयी को भला बुरा सुनाते थे। शोकार्त शत्रुघ्न मन्थरा को इन आपत्तियों का मूल समझ कर मारने पीटने लगे। अनन्तर वशिष्ठ आदि महर्षि तथा महात्माओं ने कुमार भरत को समझा बुझा कर, स्थिर किया और महाराज की अन्येष्टि क्रिया करने के लिये अनुरोध किया। महाराज दशरथ का शरीर तेल से निकाल कर, सरयूतीर लाया गया और चन्दन आदि काष्ठों से चिता बना कर, उसमें रखा गया। देखते ही देखते महाराज का शरीर भस्म हो गया। महाराज के शरीर को भस्म होते देख, भरत शत्रुघ्न और कौशल्या आदि रानियाँ बिलख बिलख कर रोने लगीं और चारों ओर नगर-वासियों में हाहाकार मच गया। पिता की अन्येष्टि क्रिया पूरी कर के, भरत परलोकवासी पिता तथा वनवासी राम लक्ष्मण और सीता के शोक से पीड़ित होने लगे। पितृदत्त राज्य को ग्रहण करने के लिये मंत्रियों ने बहुत प्रार्थना की, परन्तु किसी प्रकार भरत ने राज्य लेना स्वीकार न किया। भरत ने सब लोगों के साथ विचार कर के निश्चित किया कि लोकाभिराम श्री-रामचन्द्र को वन से लौटा लावें। अशौच बीतने पर अमात्य-वर्ग, मातृगण, सेना, सुमंत्र और रथ, अश्व, हाथी आदि ले कर भरत वन को प्रस्थित हुए। पथशोधकों ने पहले ही से मार्ग

साफ कर रखा था। इस लिये पहाड़ी मार्गों में भी भरत की सेना को कष्ट उठाना न पड़ा। रामचन्द्र जिन जिन स्थानों पर ठहरे थे, उन स्थानों को देख भरत अधीर हो उठते थे। अनन्तर निषादराज गुह की नाव से गङ्गापार कर, भरत भरद्वाज के आश्रम में अपनी सेना के साथ उपस्थित हुए। भरद्वाज ने अपने आश्रम में भरत को आया देख, अपनी तपस्या के प्रभाव से उनका उचित अतिथि सत्कार किया। वे भरद्वाज के बताये रास्ते से शीघ्र ही चित्रकूट पहुँच गये। अपनी सेना और अनुचर को थोड़ी दूर पर छोड़ कर, केवल सुमंत्र शत्रुघ्न और निषादराज को ले कर, भरत श्रीरामचन्द्र की पर्णकुटी के समीप उपस्थित हुए।

इधर रामचन्द्र दूर ही से सैना का कोलाहल सुन और डरे हुए मृगों का भय से इधर उधर भागना देख, लक्ष्मण की सहायता से इसका कारण जानने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने अनेक तर्क वितर्क के उपरान्त स्थिर किया कि महाराज दशरथ या कुमार भरत ही वहाँ आ रहे हैं। यह निश्चित कर के रामचन्द्र उत्सुकता के साथ कुटीर के द्वार पर बैठे ही थे कि, भरत आकर उनके चरणों पर गिर पड़े और राम लक्ष्मण का तापस वेश और स्वर्गवासी पिता का स्मरण कर, भरत की आँखों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। भ्रातृवत्सल भरत ने तापस वेष में रामचन्द्र का वन जाना सुन कर, स्वयं भी तापस वेष धारण किया था और वे पिता के शोक से अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। अतएव रामचन्द्र ने भरत को पहिले पहिचाना ही नहीं, थोड़ी देर में रामचन्द्र जी ने भरत को

पहिचाना और व्यग्रता तथा स्नेह पूर्वक उन्हें गले लगाया। अनन्तर वे पिता माता और राज्य आदि का कुशल समाचार पूँछने लगे। भरत से पिता का मृत्यु-संवाद सुन कर, रामचन्द्र सहसा मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े और अत्यन्त कातरता पूर्वक रोदन करने लगे। इसी प्रकार बहुत समय वीत गया। अनन्तर कुछ कुछ स्थिर होकर सीता और लक्ष्मण के साथ गङ्गा में स्नान कर के, श्रीरामचन्द्र ने पिता का श्राद्धतर्पण आदि समाप्त किया। कुछ देर बाद महर्षि वशिष्ठ के साथ कौशल्या आदि महारानी रामचन्द्र जी की कुटीर में आयीं। उनके आते ही पुनः शोकसमुद्र उमग पड़ा। सूर्य्य के ताप से कुम्हलायी हुईं जानकी अपनी सास के साथ परलोकवासी ससुर के लिये अधीर होकर रोने लगीं।

धीरे धीरे शोक का वेग कुछ धीमा हुआ। अत्यन्त नम्रता पूर्वक भरत ने अयोध्या लौट कर, राज्य भार लेने के लिये श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना की। महर्षि वशिष्ठ आदि ब्राह्मण और मंत्रिगण तथा नगरवासी, जनपदवासी आदि सभी ने भरत की प्रार्थना का समर्थन किया। परन्तु सत्यनिष्ठ और दृढ़प्रतिज्ञ रामचन्द्र जी ने उनकी प्रार्थना अनसुनी कर दी। रामचन्द्र जी ने अपने वनवास के समय में राज्यशासन और प्रजापालन करने के लिये भरत जी से कहा और पिता की आज्ञा का पालन किये विना वे अयोध्या नहीं लौट सकते— इस बात को उन्होंने भरत आदि को समझा दिया। जब भरत ने रामचन्द्र के सङ्कल्प को अटल देखा, तब अगत्या श्रीराम-

चन्द्र जी की स्वर्णपादुका की याञ्चा उन्होंने की, मंत्रियों की सलाह से भरत रामचन्द्र की पादुका मस्तक पर रख, वहाँ से विदा हुए। राम लक्ष्मण और सीता ने यथाक्रम मातृगण और महर्षि वशिष्ठ आदि को प्रणाम किया। अनन्तर अत्यन्त कष्ट के साथ श्रीरामचन्द्र को उसी निर्जन वन में छोड़, वे सब अयोध्या चले आये। भरत नन्दीग्राम में आये और रामचन्द्र की पादुकाओं को सिंहासन पर स्थापित कर के तथा स्वयं जटा-वल्कलधारी तपस्वी का वेष धारण कर के, वहाँ रहने लगे और वहीं से वे समस्त राज्य का कार्य देखने और प्रबन्ध करने लगे।

भरत अयोध्या को लौट आये और श्रीरामचन्द्र पूर्ववत् चित्रकूट ही में वास करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि चित्रकूटवासी तपस्वी-गण आपस में छिप कर कुछ बातें करते हैं और बीच बीच में रामचन्द्र की ओर ताक कर, भौंहे चलाते हैं। यह देख रामचन्द्र जी व्याकुल हुए और इसका कारण उन्होंने कुलपति से पूँछा, कुलपति के उत्तर से मालूम हुआ कि महर्षि श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और सीता के आचरण से कुछ भी असन्तुष्ट नहीं हैं, किन्तु इसी वन में रहने वाले खरदूषण आदि दुष्ट राक्षसों ने रामचन्द्र के प्रभाव से दुःखित हो कर निरपराध महर्षियों को दुःख देना ठाना है। इसी कारण महर्षिगण चित्रकूट के समीपस्थ आश्रमों को छोड़ कर, एकान्त किसी दूसरे स्थान में जाना चाहते हैं। रामचन्द्र पत्नी के साथ इस वन में रहते हैं, अतएव ऐसे समय में उन्हें सावधान रहना चाहिये। यदि रामचन्द्र चाहें तो महर्षियों के साथ किसी अन्य निरुपद्रव स्थान में जा कर रह सकते हैं।

अनेक ऋषि उस आश्रम को छोड़, दूसरे आश्रम में चले गये। जो नहीं जा सके, वे रामचन्द्र जी की सहायता पर

निर्भय हो कर चित्रकूट ही में रहने लगे। सुशीला जानकी महर्षियों की सेवा कर के सन्तुष्ट होतीं, कभी अपने पति के साथ, पयस्विनी के तट पर घूमतीं और वहाँ हंस सारस आदि की जल-क्रीड़ा देख, अत्यन्त आनन्दित होतीं। हाँ, भरत की सेना अनुचर वर्ग तथा हाथी घोड़े आदि इस वन की अपूर्व शोभा नष्ट कर चुके थे, इसी कारण अब श्रीराम को इस वन में पूर्ववत् आनन्द नहीं मिलता और उस स्थान के ग्राम के समीप होने के करण भी, रामचन्द्र ने उस स्थान को छोड़ दूसरे स्थान को जाना ही निश्चित किया। दूसरा कारण यह था कि श्रीरामचन्द्र, भरत और अपनी माताओं से उसी स्थान पर मिले थे, वे सब उसी स्थान पर रामचन्द्र के शोक से व्याकुल हुए थे, रामचन्द्र भी उनको सहसा भूल नहीं सकते थे, अतएव उस स्थान को छोड़ कर, अन्यत्र जाना ही उन्होंने निश्चित हुआ।

श्रीरामचन्द्र, लमदण और जानकी के साथ महर्षियों से विदा होकर महर्षि अत्रि के आश्रम में उपस्थित हुए। जिस समय महार्षि अत्रि उनका अतिथि सत्कार करते थे, उसी समय महर्षि अत्रि की पत्नी धर्मपरायणा अनुसूया भी वहाँ आ पहुँचीं। ये पतिव्रताओं की पूजनीय, तपोबल युक्त महिला कुल देवता थीं। वे अत्यन्त वृद्ध थीं, इनके अङ्गों में बल पड़ गये थे, अस्थियों के जोड़ शिथिल हो गये थे। सिर के बाल चाँदी की तरह सफेद हो गये थे। शरीर उनका काँपता था। सीता अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार, उनके समीप गयीं, और प्रणाम करने की रीति के अनुसार, अपना नाम कह कर उन्होंने वृद्धा अनुसूया को प्रणाम किया और उनसे कुशल प्रश्न पूँछा। अनुसूया उनकी ओर देख कर, कहने लगीं:—

जानकी! तुम धर्मात्मा हो। तुम आत्मीय स्वजन आदि को छोड़ कर, बड़े भाग्य से वनचारी श्रीरामचन्द्र जी के साथ वन में आयी हो। स्वामी अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल नगर में रहे चाहे वन में, जो स्त्री उसको अपना प्रिय समझती है उसको सद्गति प्राप्त होती है। पति दुःशील, स्वेच्छाचारी अथवा दरिद्र ही क्यों न हो, उत्तम स्वभाव की स्त्रियाँ उसे ही अपना देवता समझती हैं। सञ्चित पुण्य के समान सब अंशों में सुखकर और हितकर बहुत विचार ने पर भी पति को छोड़, मुझे दूसरा नहीं दीखता। जो केवल भोगविलास के लिये पति से प्रेम करती हैं, वे स्वैरिणी हैं। जानकी! वैसी चरित्रहीना स्त्रियाँ पापिनी होती हैं। परन्तु तुम्हारे समान जिनको अपने हित अहित का ज्ञान है, वे गुणवती पुण्यशीला स्वर्ग में पूजित होती हैं। अतएव तुमको सब विषयों में पति ही का अनुवर्तन करना चाहिये। अनुसूया ने और कहाः—

चौपाई।

मातु पिता भ्राता हितकारी,
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमितदानि भर्ता वैदेही,
अधम सो नारि जो सेव न तेही।
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना,
अन्ध वधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना,
नारि पाव जमपुर दुःख नाना।
एकई धरम एक व्रत नेमा,
काय वचन मन पतिपद प्रेमा।
छन सुख लागि जनम शतकोटी,
दुःखन समझ तेहि सम को खोटी।

विनु स्रम नारि परम गति लहई,
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई,
विधवा होई पाइ तरुनाई।

—रामायण आ० का०

ऋषिपत्नी अनुसूया के इन उपदेशों का मूल्य इस जगत् में मिलना असम्भव है। पतिव्रत धर्म का ऐसा उच्च आदर्श अन्य देशों में मिलना कठिन है। इस उपदेश के अनुसार चलने वाली स्त्री, इसी संसार में स्वर्गीय सुख प्राप्त करती है। हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि ऋषिपत्नी अनुसूया का यह उपदेश भारत की स्त्रियों का पुनः कण्ठभूषण बने।

जो जिस विषय से प्रेम करते हैं अथवा जिन नियमों को पालन करने में तत्पर होते हैं, उनको यदि उसी विषय का कोई उपदेश करे तो न मालूम उनके मन में किस प्रकार का एक भाव उत्पन्न होता है। उपदेशक के प्रति उनके हृदय में विरक्ति उत्पन्न होती है। पुत्रस्नेह के विषय में उपदेश देने से माता के हृदय में जो एक प्रकार का भाव उदय होता है, उसी प्रकार का भाव पतिव्रत धर्म के उपदेश से पतिव्रताओं के हृदय में भी उत्पन्न होता है, पतिपारयणता के विषय में सीता को जब जब किसी ने उपदेश दिया है, तब तब सीता के वाक्यों से एक प्रकार की असहिष्णता और विरक्ति प्रतीत हुई है। मानों सीता को इस विषय का उपदेश देने की आवश्यकता ही नहीं है। यह ठीक है, परन्तु सीता के हृदय में किसी प्रकार का अभिमान नहीं था और वे अपने को पतिभक्ति के उपदेश प्राप्त करने के योग्य भी समझती थीं। पतिभक्ति के लिये उन्हें जो कुछ उपदेश किसी से मिलते थे, उनको

वे मनोनिवेश पूर्वक सुनतीं और उन्हें पालन करने की प्राण-पण से चेष्टा करती थीं। वाल्यावस्था में ऐसे उपदेशों का आदर सीता खूब करती थीं। इस समय वे युवती हो गयी हैं। अतएव विना किसी के उपदेश के भी अपनी इच्छा ही से उन्होंने अपने स्वामी के चरणों में अपना प्राण और हृदय समर्पित किया है और सरलता तथा प्रेम के वश ऐश्वर्य को त्याग कर घोर जङ्गल में उनके साथ घूम रही हैं। सामान्य उपदेशों में जिन कार्यों का सम्पादन करने की आज्ञा होती है उनसे कहीं बढ़ कर पतिप्रेम की वशवर्तिनी सीता पतिव्रत-धर्म का पालन करती हैं। अवसर आने पर उन्होंने अपने कर्तव्य-ज्ञान और उसके पालन का परिचय भी दिया है। साराँश यह है कि इस समय भगवती सीता पतिव्रत धर्म को पालन करने वालियों में सर्वोत्तम हो गयी हैं। अतएव पतिभक्ति के मोटे मोटे उपदेशों को सुन कर, यदि उनके हृदय में एक प्रकार की असहिष्णता उत्पन्न हो जाती हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसी कारण श्रीरामचन्द्र जी के वन जाने के समय कौशल्या के उपदेश का जो उत्तर सीता ने दिया है, उससे उनकी अस-हिष्णता प्रतीत होती है और अनसूया को भी उन्होंने जो उत्तर दिया है, उससे भी वही वात मालूम होती है। इससे सीता की तेजस्विता, उदारता और उनके धर्मवल का परिचय मिलता है।

सीता जी ने अनुसूया के उपदेशों को ध्यान पूर्वक सुना। फिर उन्होंने कहा:—

सीता जी—देवि! आपका मुझको शिक्षा देना आपके लिये कोई नई बात नहीं है। परन्तु आर्ये! पति, स्त्रियों के गुरु हैं; इस बात को मैं

अच्छी तरह जानती हूँ। पति चाहे निर्धन हो, कुरूप हो, दुश्चरित्र हो, तौ भी उसकी प्राणपण से सेवा करना स्त्रियों का परम कर्तव्य है और जो पति जितेन्द्रिय हो, गुणवान् हो, दयालु हो और स्थिर अनुराग करने वाला हो, उसकी सेवा करने के लिये कहना क्या है। पितृ-मातृ-वत्सल स्वामी की सब प्रकार से सेवा करनी चाहिये। रामचन्द्र जिस प्रकार कौशल्या का आदर करते हैं, उसी प्रकार अन्य महारानियों का भी करते हैं। तपस्विनि! हमारे वन आने के समय मेरी सास कौशल्या ने मुझे जो उपदेश दिया था वह मुझे स्मरण है और विवाह के समय में मेरी माता ने मुझे जो उपदेश दिया था, वह भी मुझे याद है। पति-सेवा ही स्त्रियों के लिये तपस्या है। इस बात को मेरे भाई बन्धुओं ने भी मुझे भली भाँति समझा दिया है। पतिसेवा ही के कारण सावित्री की स्वर्ग में भी पूजा होती है और पतिसेवा के बल ही से आपने भी उत्तम लोकों को अपने अधीन कर लिया है।

जानकी की इन बातों को सुन कर, अनसूया प्रसन्न हुईं। उन्होंने सीता के मस्तक को सूँघा और उत्तम माला, वस्त्र आभरण सीता को दिये। ऋषिपत्नी ने एक अङ्गराग (उबटन) दिया जिससे सीता का शरीर और भी सुन्दर हो गया। इस

प्रकार अनसूया सीता का आदर सत्कार कर के सीता से उनके जन्म और स्वयम्बर की बातें सुनने लगीं। इसी प्रकार सन्ध्या हुई।

अनसूया ने कहा—सीते! अब मैं आज्ञा देती हूँ कि जा कर तुम पतिसेवा में लगो, अच्छी अच्छी बातों से तुमने मुझे प्रसन्न किया है और मेरे सामने ही कपड़े गहनें पहन कर फिर एक बार मुझे आनन्दित करो।

उनकी आज्ञा मान कर, सीता गहने कपड़े पहन कर, तथा ऋषिपत्नी को प्रणाम कर के, श्रीरामचन्द्र के निकट उपस्थित हुईं। सीता को देख कर, अनसूया के प्रीतिदान (प्रेम की भेंट) से श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए। भगवती सीता का इस प्रकार आदर सत्कार देख, लक्ष्मण भी अत्यन्त आनन्दित हुए।

प्रातःकाल होते ही महर्षि अत्रि से बिदा हो कर सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्र जी घोर दण्डकारण्य की ओर चले। दण्डकारण्य दूर ही से मेघों के समान काला काला दीख पड़ता है। बाघ, सिंह आदि हिंस्र जन्तुओं के गुर्राने का शब्द उस वन में दूर दूर तक फैलता था, भयानक आकार वाले राक्षसों का गर्जन सुन कर, भय उत्पन्न होता था। कहीं कहीं महर्षियों का पवित्र और शान्त आश्रम देख कर हृदय में भक्ति का सञ्चार होता था। रामचन्द्र भी लक्ष्मण और सीता के साथ उस वन की अपूर्व शोभा देख कर, प्रसन्न हुए और वहाँ के तपस्वी श्रीरामचन्द्र का उचित सत्कार कर के प्रसन्न हुए। आज कल भगवती सीता को वन की सुन्दरता देखने की लालसा बढ़ रही थी, वन में घूमने से वे बहुत प्रसन्न होती

थीं । रामचन्द्र के आश्रम में रहने से वनवास का क्लेश अभी तक सीता को मालूम नहीं हुआ था, परन्तु वनवास में केवल सुख ही नहीं होता । वहाँ भी बीच बीच में बड़े दुःखों का सामना करना पड़ता है ; इस बात को सीता जी ने एक दिन समझ लिया । एक दिन प्रातःकाल तपस्वियों की अनुमति से सीता और लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने वन में प्रवेश किया । अभी कुछ ही दूर गये थे कि विराध नाम का एक भयानक राक्षस सामने आकर खड़ा हो गया और सीता को उठा कर राम और लक्ष्मण को मारने के लिये चेष्टा करने लगा । सीता की ऐसी दशा देख कर, श्रीरामचन्द्र व्याकुल हो गये और उसी मूहूर्त्त में धनुष उठा कर,मारे बाणों के उसे पीड़ित करने लगे । श्रीराम के बाणों से पीड़ित होकर, उस दुष्ट राक्षस ने, सीता को छोड़ दिया और वह क्रोध के साथ राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा और उनको ले कर घोर वन में घुस गया । सीता जी पति और देवर की दुर्दशा देख कर, अत्यन्त अनुतप्त हुईं और रोती हुईं राक्षस के पीछे पीछे चलीं और अति दीनता से कहने लगीं कि राक्षस, सत्यपरायण रामचन्द्र और लक्ष्मण को छोड़ दो और मुझे पकड़ लो । सीता की बातों को सुन, राम और लक्ष्मण ने राक्षस की भुजा को तोड़ डाला और बल पूर्वक उसे खींच कर मिट्टी में गाड़ दिया । देखते ही देखते राक्षस मर गया, शीघ्र ही रामचन्द्र सीता के निकट आ कर उनका आश्वासन करने लगे ।

केवल एक इसी घटना से वनवास के दुःख भगवती सीता की आँखों के सामने आ गये, परन्तु इससे सीता जी डरी नहीं । स्वामी के साथ रह कर, वे बहुत बड़े बड़े कष्टों को भी सहने को तत्पर हैं । स्वामी के बिना स्वर्ग का सुख भी

उनके लिये तुच्छ ही है। जो हो सीता के मन में किसी प्रकार की दुविधा नहीं हुई, परन्तु राम और लक्ष्मण अब से साव-धानता पूर्वक रहने लगे। कहाँ राजकुमार तथा राजनन्दिनी, कहाँ उनका राजमहल, जहाँ उनकी सेवा और उनका हित करने के लिये अनेक मनुष्य प्रस्तुत हैं और कहाँ यह भयङ्कर वन, जहाँ अनेक हिंस्र जन्तु सामान्य असावधानी से भी ग्रास करने के लिये उद्यत हैं। इसी कारण श्रीरामचन्द्र रहने के लिये निरुपद्रव और भयशून्य स्थान ढूढ़ने लगे और उस स्थान को छोड़ने का विचार स्थिर किया।

वहाँ से थोड़ी ही दूर पर महर्षि शरभङ्ग का आश्रम था। वहाँ जाकर उन्होंने महर्षि को प्रणाम किया। महर्षि प्रसन्न हुए और उन लोगों का आतिथ्य सत्कार कर के, उनके रहने के लिये अपने आश्रम में एक स्थान वता दिया। इस प्रकार शिष्टाचार होने के वाद श्रीराम ने कहा—"तपोधन! इस वन में कहाँ जाकर हम लोग रहें? कोई भयशून्य स्थान कृपा कर आप वता दें।" महर्षि शरभङ्ग ने स्थान वताया और श्रीराम के सामने स्वयं अग्नि में प्रवेश कर के, उन्होंने देहत्याग की। शरभङ्ग के शरीर त्याग करने के अनन्तर, आश्रमवासी ऋषियों ने दुर्दान्त राक्षसों की पीड़ा से रक्षा करने की श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना की। राजा का, धर्मरक्षा करना कर्तव्य है, यदि वे अपना कर्तव्य पालन नहीं करेंगे, तो धर्म की रक्षा कैसे होगी? श्रीरामचन्द्र ने ऋषियों की प्रार्थना को स्वीकार किया और उन्हें निडर होकर रहने को कहा। रामचन्द्र जी ने कहा —"हम पिता का सत्य पालन करने के लिये दण्डकारण्य में आये हैं, आप लोगों की आज्ञा सर्वदा हमें स्वीकृत है। जिससे आप लोग अपना धर्मसाधन स्वतंत्रता पूर्वक करें इसके लिये

हम प्राणप्रण से चेष्टा करेंगे। वीरवर लक्ष्मण की सहायता से हम आपके शत्रुओं का नाश करेंगे। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ऋषियों को आश्वासन देकर, उन्हींके साथ सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे।

इन लोगों को देख सुतीक्ष्ण के आनन्द की सीमा न रही, उन्होंने अपने आश्रम में रहने के लिये श्रीरामचन्द्र जी से अनुरोध किया। परन्तु रामचान्द्र जी ने अपने कार्यों की ओर देख कर, वहाँ रहना उचित नहीं समझा। उस रात्रि को रामचन्द्र ने भी महर्षियों के साथ वहीं विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्र ने विनय पूर्वक कहा—"भगवन्! आपके आश्रम में आ कर, हम लोग वहुत प्रसन्न हुए। हम लोग आपके अतिथि सत्कार से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अव आप आज्ञा दें कि हम लोग जाँय। इस दण्डकारण्य के पवित्रात्मा महर्षियों के दर्शन करने की हमारी प्रवल इच्छा है, ये महर्षि भी इसके लिये शीघ्रता कर रहे हैं, अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप इनके साथ जाने की अनुमति दें। यह कह कर, लक्ष्मण और सीता के साथ श्रीरामचन्द्र वहाँ से विदा हुए। महर्षि ने उन्हें आशीर्वाद दिया और दण्डकारण्य देखने के बाद, पुनः अपने आश्रम में आने के लिये कहा।

जिस दिन श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसों को दण्ड देने के लिये महर्षियों से प्रतिज्ञा की थी, उसी दिन से भगवती सीता का चित्त एक प्रकार की शङ्का से व्याकुल हो उठा था। भगवती सीता श्रीरामचन्द्र जी से एक वात कहना चाहती थी, परन्तु अवसर न मिलने के कारण नहीं कह सकीं। हमारी भगवती सीता श्रीरामचन्द्र जी की केवल स्त्री या सहचारिणी ही नहीं थीं, किन्तु वे उनकी सहधर्मिणी और जीवन-सङ्गिनी थीं। सीता को यह मालूम था कि धर्माचरण करना ही प्रत्येक

मनुष्य का कर्तव्य है और विवाह ही उस धर्म का परम सहायक है। इसी कारण विवाह का इतना आदर है, उसमें इतनी पवित्रता है। इस विवाह के पवित्र और दृढ़ सूत्र से दो शक्तियाँ जोड़ी जाती हैं और वे एक के बल से दूसरी बलवती होती हैं और वे दोनों धर्मपथ की ओर अग्रसर होती हैं। इस प्रकार दो अपूर्ण शक्तियाँ पूर्ण होती हैं; दो अपूर्ण मनुष्य पूर्ण मनुष्य बन जाते हैं। स्त्री अपने पति की रक्षा अपने पुण्य से और पति अपने पुण्य से स्त्री की रक्षा करते हैं। दोनों में एक की अयोग्यता या हीनता के कारण दूसरे को भी कष्ट होता है। इसी कारण अपने को सुखी बनाने के लिये स्त्री और पुरुष दोनों को धर्म-सञ्चय करना पड़ता है। जिन धर्म कामों को स्त्री नहीं कर सकती है और पति से भी उसके करने के लिये यदि वह न कहे, तो उनका विवाह केवल नाम का विवाह है। ऐसी स्त्री को स्त्री कौन कह सकता है? स्त्री का क्या कर्तव्य है और उसका क्या अधिकार है इस बात को सीता जी खूब जानती थीं, वे अपने स्वामी की शारीरिक और मानसिक मङ्गल की कामना सर्वदा नहीं किया करती थीं; किन्तु वे अपने पति के आत्मा का कल्याण ही सर्वदा चाहती थीं। वे धर्मपथ से भ्रष्ट करने वाले कामों के करने से विनय पूर्वक अपने पति देव को रोकती थीं। यह ठीक ही था, क्योंकि सीता जी अपने पति की अधिक श्रद्धासक्ति करती थीं और उनकी विद्या, बुद्धि एवं धर्मज्ञान पर भरोसा रखती थीं। सीता जी इस बात को अच्छी तरह जानती थीं कि रामचन्द्र उनसे सब बातों में श्रेष्ठ हैं और किसी भी विषय का उपदेश सीता जी रामचन्द्र को नहीं दे सकतीं, तथापि रामचन्द्र को किसी अन्याय कार्य में फँसा देख कर, वे अपना अभिप्राय अत्यन्त नम्रता के

साथ प्रकाशित करतीं और यथासाध्य उस कार्य से उन्हें विरत करने की चेष्टा करती थीं। स्त्रियों के इस परम कर्तव्य को सीता जी जानती थीं। यहाँ इतना और कह देना आवश्यक है कि श्रीरामचन्द्र जी भी सीता की हितकर बातों का आदर करते थे। वह शुद्ध स्वभाव और पतिव्रता जानकी का आदर करते थे। श्रद्धा और आदर ही उनके प्रेम का मूल था, जिस प्रेम का मूल श्रद्धा या आदर नहीं है, वह प्रेम नहीं है, वह स्वार्थ की कुकल्पना मात्र है।

पति से एक बात कहने के लिये सीता जी उत्सुक हो रही थीं। श्रीरामचन्द्र जी की ऋषियों के सामने राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा सुन कर, उनका सरल मन व्याकुल हो गया था। आज कल की स्त्रियों के समान सीता शिक्षिता नहीं थीं, आज कल जैसी शिक्षा उस समय यहाँ प्रचलित नहीं थी, तथापि श्रीसीता जी का धर्मज्ञान पूर्ण था। पिता के गृह में जनक और ऋषियों के द्वारा तथा सास के घर में स्वामी से अनेक शास्त्रोपदेश उन्होंने सुने थे। कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि पढ़ने की अपेक्षा उपदेश सुनने ही से अधिक ज्ञान होता है। कहने का उद्देश केवल यही है कि धर्म साधन ही प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश है। यह बात सीता को मालूम थी, शिक्षित न होने पर भी सीता को धर्म के सूक्ष्म रहस्य मालूम थे। तपस्वी के वेष में स्वामी जीवहिंसा करेंगे यह बात सीता जी को अच्छी नहीं मालूम होती थी। इस बात को वे धर्म विरुद्ध समझती थीं। जिस समय राक्षसों का वध करने के लिये श्रीराम ने प्रतिज्ञा की, उसी समय से वे इस विषय में अपना अभिप्राय रामचन्द्र से कहना चाहती थीं, परन्तु अवसर न मिलने से वे न कह सकीं। आज मार्ग में एकान्त

होने के कारण सीता जी को अवसर मिला। उन्होंने विनय पूर्वक पति से निवेदन किया :—

सीता जी—"नाथ! धर्म के तत्वगूढ़ हैं। सब प्रकार से व्यसनों को विना छोड़े, धर्म अर्जन करना असम्भव है। व्यसन तीन प्रकार के होते हैं–झूठ बोलना, इन्द्रियों के अधीन होना और विना विरोध के किसी को मारने का उद्योग करना। पहले के दो व्यसन आपमें कभी नहीं देखे गये हैं। आपकी जितेन्द्रियता और सत्य परायणता प्रसिद्ध है। परन्तु नाथ। आप विना कारण जीवहिंसा करने का उद्योग कर रहे हैं, आपने वनवासी ऋषियों की रक्षा के लिये राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा की है और इस अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये धनुषवाण ले कर आप लक्ष्मण के साथ इस दण्डकारण्य में आये हैं। परन्तु आपको जाते देख मेरा मन अत्यन्त व्याकुल होता है। जब आपके कार्यों और उनके फलाफलों की मैं चिन्ता करती हूँ, तब मैं घबड़ा जाती हूँ। मेरी यह इच्छा नहीं है कि आप दण्डकारण्य जाँय, क्योंकि वहाँ जाने पर अवश्य ही आपको राक्षसों के विरुद्ध लड़ना पड़ेगा धनुषवाण के साथ रहने पर क्षत्रियों का तेज खूब बढ़ जाता है।

इतना कहने के बाद सीता जी ने एक कथा कही। वे कहने लगी :—

सीता—किसी ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र ने उनके यहाँ एक तलवार बन्धक रखी। बन्धक की रक्षा करने की इच्छा से महर्षि सर्वदा वहीं बैठे रहने लगे। वे वहाँ से कहीं दूसरी जगह जाते ही नहीं थे। इसी प्रकार तलवार के छूने से जीवहिंसा के पाप से ऋषि उन्मत्त हो गये और उनकी आज तक की तपस्या नष्ट हो गयी। पुनः सीता ने कहा—"प्राणनाथ! मैं आपको सिखाती नहीं, किन्तु हथियार के पास रखने से जो चित्त के भाव बदल जाते हैं, उसी बात का स्नेह के कारण आपको स्मरण दिलाती हूँ। बिना अपराध के किसी को मारना उचित नहीं है। वनवासियों की रक्षा हो इतना ही अस्त्र से काम लीजियेगा। क्षत्रिय और वनवास, क्षत्रिय धर्म और तपस्या ये परस्पर भिन्न भिन्न हैं। इस समय आपको तपस्वियों का धर्म पालना चाहिये। शुद्ध सात्विक बन कर आपको इस आश्रम में तपस्या करनी चाहिये। धर्म ही से अर्थ और सुख आदि समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं। आप यह सब जानते हैं आपको धर्मोपदेश कौन कर सकता है।

मैंने स्त्रियों की स्वभाव-जात क्षुद्रता या

चपलता के कारण यह निवेदन किया है, आप लक्ष्मण के साथ इस विषय का विचार करें और जो उचित तथा धर्मानुमोदित हो करें।

इतना कहने के बाद सीता चुप हो गयीं। पति-प्राण सीता की बातों से श्रीरामचन्द्र प्रसन्न हुए। दण्डकारण्य में रहने वाले राक्षस निरपराधी ऋषियों को पीड़ा करते और विनष्ट करते हैं तथा उनकी तपस्या में अनेक प्रकार के विघ्न डालते हैं। ऋषिगण राम जी के शरणागत हुए हैं, दुःखी की रक्षा करना क्षत्रियों का विशेषतः रघुवंशियों का परम कर्तव्य है, इसी अपनी कुल मर्यादा का पालन करने के लिये ही रामचन्द्र जी ने महर्षियों को अभयदान दिया है। नरभक्षक राक्षसों को मारना राम जैसे पुरुषश्रेष्ठ वीरों ही का काम है। रामचन्द्र जी ने सीता से कहा :—

श्रीरामचन्द्र—जानकी! मैंने ऋषियों की रक्षा करने का भार अपने सिर पर उठाया है। सत्य ही हमारा सब से प्रिय है, हम "हाँ" कर के पुनः किसी कारण वश प्राण जाने पर भी "ना" नहीं कह सकते। प्रसन्नता पूर्वक हम प्राण छोड़ सकते हैं। लक्ष्मण और तुमको भी छोड़ सकते हैं, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को कभी नहीं टाल सकते। विना कहे जिस काम को करने की हमारी इच्छा थी, अब उस काम को प्रतिज्ञा कर के भला हम कैसे छोड़ सकते हैं। प्रिये! स्नेह से

जो तुमने कहा है, उसे सुन कर हम प्रसन्न हुए हैं। प्रिय ही से सब तरह की बातें कही जाती हैं। जो प्रिय नहीं हैं उसे कुछ भी कहने का कोई साहस नहीं करता। जिस कुल में तुम उत्पन्न हुई हो—ये वाक्य उसी कुल और तुम्हारे योग्य हैं। इसमें तिल भर भी सन्देह नहीं। तुम हमें निज प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, तुम हमारे इस सङ्कल्प का अनुमोदन करो। इन राक्षसों से बढ़ कर हमारा अपराधी दूसरा नहीं हो सकता। हम लोग धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले हैं और वे धर्मद्वेषी हैं, प्रजा पालन करना ही हमारा कर्त्तव्य है और वे प्रजा का नाश करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हम सदाचारिता और सच्चरित्रता का प्रचार चाहते हैं और वे दुराचार और दुश्चरित्रता फैलाते हैं। इस प्रकार हमारे प्रत्येक कार्य के वे बाधक और हमारे अपराधी हैं।

श्रीरामचन्द्र जी ने इसी प्रकार सीता जी को समझा बुझा दिया।

श्रीरामचन्द्र जी के उपदेशों को सीता ने ध्यान पूर्वक सुना, और वे असली बात समझ गयीं। परन्तु उन्होंने अपना कर्तव्य बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया इसमें सन्देह नहीं है।

श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डकारण्य के अनेक स्थान देखे। वे वन नद नदी तालाब सरोवर पर्वत गुहा

आदि की अकृत्रिम शोभा देख प्रसन्न हुए। कहीं वनैले पशु पक्षी आदि के सुन्दर रूप और उनका निर्भय शब्द; कहीं हाथी, कहीं महिष, कहीं भयानक सूअर, कहीं इस वृक्ष से उस वृक्ष पर कूदते हुए वानर और कहीं भयङ्कर राक्षसों को देख कर, उनके मन में कभी आनन्द और कभी कुतूहल का सञ्चार होता था। अनेक ऋषियों के दर्शनों और सम्भाषण से रामचन्द्र तथा लक्ष्मण प्रसन्न हुए। अनेक ऋषि-पत्नी और ऋषि-कन्याओं की भोली भाली आकृति और उनका स्वाभाविक प्रेम देख, सीता आनन्दित हुईं। कहीं वर्ष दिन, कहीं दस मास, कहीं आठ मास, इसी प्रकार वास करते हुए, इनके दस वर्ष बीत गये।

दण्डकारण्य देख लेने के बाद, अपनी पहिली प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीरामचन्द्र जी पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम में आये और वहीं रहने लगे। उस आश्रम में रहने के समय ही एक दिन अगस्त्य मुनि का दर्शन करने की रामचन्द्र की प्रबल इच्छा हुई, वह उनका आश्रम नहीं जानते थे। अतएव सुतीक्ष्ण के कहने के अनुसार लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्र वहाँ जाने के लिये उद्यत हुए। महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम से चार योजन = १६ कोस दक्षिण की ओर जाकर वे महर्षि अगस्त्य के भाई इध्मवाह के आश्रम में उपस्थित हुए। यह आश्रम अत्यन्त मनोहर था, एक रात वे वहीं ठहरे, दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे अगस्त्य के आश्रम की ओर चले। मार्ग में वे वन की शोभा देख कर प्रसन्न होते थे। लगभग एक योजन जाने के बाद उन लोगों ने अगस्त्य के आश्रम को देखा। उसको देखते ही उसकी पवित्रता और शान्ति का प्रभाव

रामचन्द्र जी के मन पर पड़ा। उन्होंने कुछ दिन वहाँ रहने का निश्चय किया।

वीरश्रेष्ठ लक्ष्मण ने सब से पहले आश्रम में जा कर प्रणाम पूर्वक रामचन्द्र और सीता के आने का संवाद महर्षि अगस्त्य को सुनाया। उनका आगमन सुन कर, महर्षि प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने एक योग्य शिष्य को आदर पूर्वक उनको लाने की आज्ञा दी और स्वयं भी रामचन्द्र का स्वागत करने के लिये उठे। वह आगे बढ़ने को उद्यत होते ही थे कि इतने में श्रीरामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने प्रणाम किया। आन्तरिक प्रेम के साथ महर्षि ने उनका सत्कार किया और जब उन्होंने सुना कि रामचन्द्र हमको (अगस्त्य को) देखने आये हैं; तब वे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे :—

अगस्त्य जी—तुम ! जानकी को साथ ले कर हमारे दर्शन को आये हो; इससे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो। लक्ष्मण ! मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ। इस समय तुम लोग पथ के परिश्रम से थके हुए हो, जानकी भी विश्राम करने के लिये उत्सुक जान पड़ती है, इस कोमलाङ्गी ने कभी कष्ट नहीं उठाया है। केवल पतिस्नेह के वश दुःखों से पूर्ण वनवास का कष्ट उठाना इसने स्वीकार किया है। राम ! इस स्थान पर जिस प्रकार सीता को सुख हो, तुम वैसा ही करो। तुम्हारे साथ आकर इसने अत्यन्त कठिन काम किया है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है।

अरुन्धती के समान इसकी देवताओं में पूजा होगी। बेटा! तुम सीता और लक्ष्मण के साथ यहाँ वास करो, तुम्हारे यहाँ रहने से यह स्थान शोभित होगा।

महर्षि के वचनों को सुन कर, रामचन्द्र ने हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक निवेदन किया।

श्रीरामचन्द्र—तपोधन! आप हमारे गुरु हैं, यदि आप हम लोगों के गुणों से प्रसन्न हुए हैं, तो अवश्य ही हम लोग धन्य हैं। इसी वन में जहाँ जल का सुविधा हो, ऐसा एक स्थान हमको वता दिया जाय। वहीं कुटी वना कर हम लोग रहेंगे।

कुछ देर सोचने के वाद वहाँ से दो योजन की दूरी पर पञ्चवटी नामक स्थान में रहने के लिये महर्षि ने आदेश दिया। रामचन्द्र ने वहाँ जाना निश्चित किया और महर्षि का प्रदक्षिण कर के वे पञ्चवटी के लिये प्रस्थित हुए।

पाञ्चवटी एक रमणीय स्थान है। उसके समीप ही गोदावरी की स्वच्छ धारा प्रवाहित हो रही है। वृक्ष और लताएँ मानो गृह पर आये अतिथि के समान श्रीरामचन्द्र का पुष्पों से स्वागत कर रहे हैं। रङ्गविरङ्गे पक्षि समूह अपने शब्दों से मानो सीता के पतिव्रता धर्म का यश गान कर रहे हैं। वहाँ के अकड़े हुए वृक्ष मानों इस बात को कह रहे हैं कि श्रीरामचन्द्र जी अपनी प्रतिज्ञा पर इसी प्रकार सर्वदा अटल रहते हैं। ऐसे सुन्दर और भावज्ञ वन को देख, रामचन्द्र जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने समतल भूमि पर कुटी बनाने के लिये

लक्ष्मण को आज्ञा दी। लक्ष्मण ने भी एक सुन्दर कुटी तैयार की। कुटी की भीत मिट्टी की बनायी गयी और ऊपर की छत्त कुशकाश आदि तृणों से पाटी गयी। कुटीर की सुन्दरता देख कर, रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए, अनन्तर वास्तु-शान्ति कर के, एक अच्छे मूहूर्त्त में, गृह-प्रवेश हुआ। उस निर्जन प्रदेश की शोभा देख कर, सीता को सब से अधिक आनन्द होता था। रमणीय पञ्चवटी को सीता जी अपने पिता के घर से भी अधिक सुख कर समझती थीं।

आठवाँ अध्याय।

श्रीराम रमणीय पञ्चवटी में सुख से वास करते थे। फूल और फल से लदेफदे वृक्ष तथा लताओं की शोभा, मोरों की ध्वनि और उन्मत्तनृत्य हरिण और हरिणियों की उत्सुकता और चञ्चलता आदि उस वन को और भी रमणीय बना रही थीं। सीता की सुशीलता से हरिणी, पक्षी आदि उनसे प्रेम करने लगे। वे सीता के साथ रहना अधिक पसन्द करते थे। सीता जब गोदावरी स्नान करने जातीं, तभी हरिणी आदि उनके पीछे लग जाती थीं। उनकी कुटीर के आसपास के वृक्षों पर बहुत ही सुन्दर सुन्दर पक्षी आते और मीठी मीठी तानें सुना कर, सीता को प्रसन्न करते थे। श्रीरामचन्द्र जी के साथ जब सीता जी कहीं बाहर जातीं ; तब वहाँ से सुन्दर सुन्दर फूल चुन लेतीं थीं और उन्हीं फूलों से गहना बना कर, आप पहन लेतीं। कभी कभी श्रीरामचन्द्र भी सीता के लिये सुन्दर पुष्प और पत्तियों के गहने बनाते और उसे सीता को देते, सीता जी पति का आदर देख प्रसन्न और लज्जित होतीं। इसी प्रकार ये दम्पति उस निर्जन वन में भी राज्य सुख अथवा स्वर्ग सुख का अनुभव करते थे। लक्ष्मण भी अपने काम में सर्वदा लगे रहते थे। वे सर्वदा इस आश्रम की रक्षा करने के लिये सजग रहते थे। भ्रातृवत्सल श्रीलक्ष्मण धनुषबाण

ले कर उस आश्रम के चारों ओर घमा करते थे। वे प्रति दिन गोदावरी से जल लाया करते थे, फल, फूल, मूल, लकड़ी आदि जुटाया करते थे और राम तथा सीता की सेवा स्वच्छ भाव से करते थे। भगवती सीता अपने देवर की श्रीरामचन्द्र से बड़ी प्रशंसा करतीं, रामचन्द्र भी सीता का लक्ष्मण पर स्नेह देख कर प्रसन्न होते और उनका गुण गान करते थे।

श्रीरामचन्द्र तपस्वियों के समान अपनी सब क्रियायें करते थे, त्रिकाल सन्ध्या, देव पूजा, फल मूल खा कर रहना तथा और भी उनकी क्रियायें महर्षियों की सी ही थीं। कभी कभी अपने क्षत्रिय धर्म के अनुसार बनैले, दुर्बलों को पीड़ा देने वाले हिंसक जन्तुओं का वध करते थे; परन्तु जब तब उनका अत्याचार अधिक बढ़ जाता था। भिन्न भिन्न ऋतुओं की शोभा को श्रीराम और सीता बड़े आदर के साथ देखते और उससे प्रसन्न होते थे। वर्षा ऋतु में अपनी कुटीर में बैठ कर अपनी पहली कथा स्मरण करते और उस दुःख की कहानी में एक प्रकार के मधुर आनन्द का वे अनुभव करते थे। शरद्काल में वन की शोभा देख कर उन लोगों को अयोध्या की बहुत सी बातें स्मरण हो आतीं। शीत ऋतु में वन की दशा देख कर उन्हें दुःख होता था, कमलों की सुन्दर शोभा शीत से नष्ट होती देख, सीता के हृदय में एक प्रकार का विलक्षणभाव उत्पन्न होता था। पशु पक्षी आदि को जाड़े से ठिठुरते देख रामचन्द्र का दयालु हृदय पिघल जाता था। रामचन्द्र और सीता भी कम्बल आदि सामान्य वस्त्रों ही के द्वारा अपना शीत निवारण करतीं। कभी वे लकड़ी और कण्डे आदि जला कर के शीत निवारण करते और जागते जागते रात बिता देते थे। वसन्त ऋतु के आते ही सभी का क्लेश

नष्ट हो जाता । वन की शोभा पहिले से अधिक बढ़ जाती, कोमल कोमल पत्तियों से वृक्ष सुसज्जित होते, वायु बहने लगता पहले जो वातें कष्ट देती थीं आज उन्हींसे सुख होने लगता था । वन पुष्पमय हो जाते, सीता सर्वदा फूल ही तोड़ा करतीं और अपने रोपे वृक्षों में पानी देतीं और कभी उनकी जड़ों में थाला बनाती थीं । इसी प्रकार प्रसन्नता पूर्वक वे इन्हीं कामों में लगी रहती थीं । कभी कभी हरिण के बच्चों के साथ खेला करतीं और कभी वन की शोभा देखती और मन ही मन प्रसन्न होती थीं ।

इसी प्रकार वे पञ्चवटी में सुख से वास करते थे कि एक दिन एक घोर विपत में उन्हें फँसना पड़ा । सीता लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र जी एक समय आनन्द से बैठे बातें कर रहे थे, वहाँ सूपनखा नाम की एक राक्षसी आकर उपस्थित हुई । उसने राम और लक्ष्मण—इनमें से किसी एक के साथ अपना व्याह करने की इच्छा प्रकट की । उसकी नीचता देख रामचन्द्र ने उसका तिरस्कार किया, तब बड़े क्रोध से वह सीता की ओर झपटी । उसका यह अत्याचार लक्ष्मण से नहीं देखा गया, उन्होंने झट तलवार से उसकी नाक और कान काट लिये । स्त्री वध करना मना है इसी कारण उन्होंने उसके प्राण छोड़ दिये । राक्षसी अपना अति कुरूप मुँह ले कर पीड़ा से रोती चिल्लाती हुई वहाँ से चली गयी ।

सूपनखा प्रतापी रावण की बहिन है, रावण लङ्का का राजा है । खर और दूषण नाम के दो भाई चौदह हजार सेना लेकर सर्वदा इस दुराचारिणी की रक्षा करते थे । पञ्चवटी के समीप ही जनस्थान नामक स्थान में ये रहते थे, और बला-त्कार से महर्षियों के आश्रमों में घुस जाते । उनकी तपस्या में

विघ्न डालते और उनको मारते थे। सूपनखा के नाक कान कटे देख कर और उससे काटने वाले का पता पाकर राक्षस अधीर हो गये। उन लोगों ने राम लक्ष्मण को इसका दण्ड देने के लिये प्रतिज्ञा की और तदनुसार वे चढ़ दौड़े। दूर ही से उन्हें आते देख, रामचन्द्र भी सावधान हो गये। परन्तु इस युद्ध के समय सीता को किसी सुरक्षित स्थान में रखने की चिन्ता उपस्थित हुई। कुछ देर सोचने के वाद रामचन्द्र जी ने एक पर्वत की गुफा में जहाँ शत्रुओं के जाने की सम्भावना नहीं थी; सीता जी को लक्ष्मण के साथ भेज दिया और आप युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। थोड़ी ही देर के वाद राक्षसों की सेना उमड़ी हुई आ गयी। उस वड़ी सेना को देख कर, वीरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी अचलभाव से खड़े रहे और अकेले ही उनसे युद्ध करने लगे। श्रीरामचन्द्र के तीखे और ज़हरीले वाणों को राक्षस नहीं सह सके, वे कट कट कर गिरने लगे, यह देख खरदूषण के मन में वड़ा क्रोध उपजा। उन्होंने घोर युद्ध करने के लिये अपनी सेना को वढावा दिया, परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। किसी प्रकार वे रामचन्द्र को हटा नहीं सके। इसी प्रकार कुछ देर तक युद्ध होता रहा। अन्त में खर और दूषण अपनी अपनी सेना के साथ मारे गये। युद्ध में श्रीरामचन्द्र विजयी हुए। यह सुन कर सीता भी देवर के साथ वहाँ आयीं और स्वामी को अक्षत शरीर देख मारे हर्ष के आनन्दाश्रु की धारा वहाने लगीं।

न मालूम किस मुहूर्त्त में लक्ष्मण ने सूपनखा की नाक काटी थी। सूपनखा अपने दोनों भाइयों को सेना के साथ मरा देख, दौड़ी दौड़ी लङ्का पहुँची। वहाँ जाकर उसने अपने नाक कान काटे जाने का समाचार और खर एवं दूषण का

सेना के साथ मारा जाना रावण से कहा, और इसका बदला चुकाने के लिये रामचन्द्र और लक्ष्मण का नाश करने का परामर्श रावण को दिया। उसने रावण से कहाः—

सूपनखा—सीता के समान रूपवती स्त्री इस सँसार में दूसरी नहीं है। सीता की सुन्दरता और लावण्य से वन शोभित हो रहा है। सीता अपने पति की प्यारी है। राम सीता को अपने प्राणों से भी बढ़ कर समझते हैं। लक्ष्मण उनका अनुगत है। यदि तुम किसी प्रकार सीता को हरण कर के ला सको तो इस एक ही काम से दो काम हो सकेंगे। पहला तो यह कि सीता के वियोग से अवश्य ही रामचन्द्र की मृत्यु हो जायगी, और रामचन्द्र की मृत्यु के बाद भ्रातृवत्सल लक्ष्मण किसी प्रकार जी नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि सीता के समान सँसार का नारीरत्न तुम्हारे हाथ लग जायगा। तुम्हारे रनवास में जितनी स्त्रियाँ हैं; उनमें एक भी सीता की बराबरी नहीं कर सकती। बिना इस उपाय के, युद्ध में राम लक्ष्मण को मार कर सीता को ले आना बहुत ही कठिन है। अनायास जिस उपाय से शत्रु का नाश हो, उसी उपाय को काम में लाना चाहिये।

रावण बड़ा दुराचारी था। वह पराक्रमी और प्रचुर ऐश्वर्य का स्वामी था। उसके डर से देवता भी काँपते थे।

रावण ने पृथिवी का ऐश्वर्य और पशुओं के समान बल पाने के लिये विकट तपस्या की थी। वह इन्द्रियों के वश में था और बड़ा दुराचारी था। उसने कितनी कुल ललनाओं को उनके पिता माता और पति से बलपूर्वक छीन कर अपने घर में रख छोड़ा था, इसकी गिनती करना कठिन है। उसके निन्दित चरित्र की बातों को सुन कर हृदय में केवल घृणा ही उत्पन्न होती है।

दुराचारी राक्षस अपनी भगिनी के मुँह से सीता के अलौकिक रूप की प्रशंसा सुन कर, अधीर हो गया। वह सूपनखा की बातों से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और उसको बहुत तरह समझाया। अनन्तर अपने उद्देश्य को साधन करने के लिये उसी समय वह खच्चरों के रथ पर चढ़ कर, जन-स्थान की ओर चला। समुद्र पार कर के वह मायावी राक्षस मारीच के यहाँ गया। मारीच से उसने अपनी सब बातें कह सुनायीं और अपने कार्य में उससे सहायता चाही। मारीच रामचन्द्र के पराक्रम को भली भाँति जानता था। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में सोलह वर्ष के रामचन्द्र ने बाणों से उसे समुद्र में फेक दिया था, इस बात का स्मरण कर के उसने रावण की एक भी न सुनी, प्रत्युत बहुत ऊँच नीच दिखा कर इस काम से निवृत्त होने के लिये उसने रावण को समझाया। परन्तु जिसके सिर पर मौत सवार होती है, वह किसी का हितोपदेश नहीं सुनता, मारीच की बातों को सुन कर, रावण उसे डाँटने डपटने लगा; यहाँ तक कि उसने मारीच को जान से मार डालने का भय दिखाया। यदि मरना ही निश्चित है तो रामचन्द्र के हाथों ही से मरना अच्छा है, यह सोच कर के, रावण का काम

करना उसने स्वीकार किया। सोने का मृग बना कर उस मायावी को जनस्थान में सीता को मोहित करने के लिये भेजा और चलते समय उसने उससे कहा :—

रावण—तुम्हारी सुन्दरता देख कर, अवश्य ही सीता तुमको पकड़ने के लिये राम से कहेंगी, उस समय तुम दौड़ कर बढ़ जाना और ख़ूब जोर से–'हे लक्ष्मण, हे सीता' कह कर, दुःखित स्वर से पुकारना और आप कहीं छिप जाना। यह सुन कर अवश्य ही राम को खोजने के लिये सीता लक्ष्मण को भेजेंगी। इस प्रकार जब वह कुटी में अकेली रह जायगी तब मैं उसे ले कर लङ्का चला जाऊँगा।

मारीच ने रावण की इस आज्ञा को माना और इसीके साथ ही सीता के भी सुख के दिन समाप्त हुए।

एक दिन सीता आश्रम के समीप ही कदलीवन में पुष्प बटोर रही थीं। उसके पास ही एक पत्थर पर राम और लक्ष्मण बैठे हुए थे। सीता जी कभी हिरन के साथ खेलती थीं और कभी फूल बटोरने लगती थीं। इसी समय हिरन और हिरनी आदि डर कर भागने लगीं। पहले तो इसका कारण सीता जी को कुछ भी मालूम नहीं हुआ; परन्तु थोड़ी ही देर में एक बहुत ही सुन्दर सोने का मृग, उनके सामने इधर उधर दौड़ने लगा। उस अद्भुत मृग को देख कर, सीता बहुत प्रसन्न हुईं और रामचन्द्र तथा लक्ष्मण को शीघ्र ही वहाँ आने के लिये अनुरोध करने लगीं। लक्ष्मण और

राम वहाँ गये और उन्होंने उस मृग को देखा। लक्ष्मण ने उसे देखते ही पहचान लिया और कहा कि यह तो मायावी राक्षस जान पड़ता है। परन्तु भावी प्रबल होती है; इस कारण लक्ष्मण की बातों पर किसी ने ध्यान हा नहीं दिया। सीता उसे देख मुग्ध हो गयी थीं। उन्होंने कहा:—

सीता—यह सुन्दर मृग बड़ा ही भला जान पड़ता है। इसको यदि आप पकड़ लावें तो बड़ा उपकार होगा। मैं इसके साथ खेलूँगी। यद्यपि हमारे इस आश्रम में भी अनेक मृग हैं और वे देखने में भी सुन्दर हैं; तथापि जैसी इसकी सुन्दरता है, जैसा शान्त इसका स्वभाव है, वैसा दूसरों का नहीं है। यह अनेक रङ्ग का सोने का मृग मैंने पहले कभी नहीं देखा था। कैसा अच्छा इसका रूप है, इसकी कैसी अनूठी सुन्दरता है और कैसी मधुर बोली है। इसको देख कर मेरा मन चञ्चल हो गया है, यदि आप इसे जीता ही पकड़ लें तो अच्छा होगा। अब हम लोगों के वनवास की अवधि पूरी होने वाली है। जब हम लोगों को पुनः राज्य मिलेगा; तब यह हमारे महल में रहेगा और इसको देख कर, सभी को विस्मय होगा। यदि जीता हुआ न पकड़ा जाय, तो इसका चर्म ही हम लोगों के काम में आवेगा। स्त्रियों के लिये यह अत्यन्त अनुचित है कि वे

अपने पति को किसी काम के करने की आज्ञा दें, परन्तु इसको देखने से मेरा हृदय अत्यन्त विस्मित हो गया है।

अपने स्वार्थ के लिये पति को आज्ञा देना स्त्रियों के लिये अनुचित है, इस बात को जान कर भी अपने मुग्ध स्वभाव के कारण, सीता जी से स्त्री-कर्तव्य का पालन नहीं हो सका। इस जगत् में कितनी स्त्रियाँ बड़े कठिन कार्यों को करने के लिये केवल अपने सुख के हेतु, सीता के समान ही अपने पति को आज्ञा देती हैं। हम यह नहीं कहते कि स्त्रियों को अपने पति से कुछ माँगना ही नहीं चाहिये, किन्तु जिस काम को उनका स्वामी नहीं कर सकता, अथवा कर भी सकता है तो बड़े दुःख से, ऐसे कामों के करने के लिये पतिव्रता स्त्रियों को उचित है कि वे अपने पति की नाक में दम न करें। भगवती सीता ने रामचन्द्र जी से जो वस्तु माँगी है, वह रामचन्द्र जी के लिये असम्भव नहीं है। जो चौदह हज़ार राक्षसों की सेना को अकेले मार सकता है, उसके लिये एक मृग का पकड़ना या मारना कुछ बड़ी बात नहीं है। इस बात को सीता जानती थीं, इसी कारण उन्होंने उस मृग अथवा उसके चर्म को माँगा है। इससे सीता जी का कार्य अनुचित नहीं कहा जा सकता। हाँ यदि सीता जी अपने कहने के अनुसार ही स्त्री-कर्तव्य का पालन करतीं तो सम्भव था कि आने वाली विपत्तियों का उन्हें सामना न करना पड़ता।

रामचन्द्र जी ने जानकी की प्रार्थना सुनी और धनुष बाण ले कर, वे मृग को पकड़ने के लिये चले और उन्होंने लक्ष्मण से कहा:—

श्रीरामचन्द्र—लक्ष्मण! यदि वह सचमुच मृग ही है, तो उसे पकड़ कर या मार कर मैं लाऊँगा ही। यदि मायावी राक्षस है तो उसका मारना आवश्यक ही है। (फिर उन्हों ने कहा कि) यहाँ के राक्षस हम लोगों से बिगड़े हुए हैं; अतएव यहाँ तुम सावधान हो कर रहना। जानकी को छोड़ कर कहीं न जाना।

रामचन्द्र की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण सीता की रक्षा सावधानी से करने लगे।

यदि रामचन्द्र उस मृग को मारना चाहते, तो वहीं से मार सकते थे। परन्तु सीता को प्रसन्न करने के लिये वे उसे जीवित ही पकड़ना चाहते थे। श्रीरामचन्द्र को धनुष बाण लिये आते देख वह हिरन दौड़ा। कभी वह रामचन्द्र के समीप आ कर रामचन्द्र को ललचाता था और कभी बहुत दूर निकल जाता था। इसी प्रकार जाते जाते श्रीराम आश्रम से बहुत दूर निकल गये। उस समय एक बार ही रामचन्द्र को सन्देह हुआ और उन्होंने शीघ्र ही उस मृग पर बाण चलाया। बाण के लगते ही मृग का तो पता नहीं; किन्तु एक भयानक आकार का राक्षस—"हा लक्ष्मण, हा सीते" कहता हुआ पृथ्वी पर गिर गया और मर भी गया। यह देख कर श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त विस्मित हुए और उसके चिल्लाने का ढङ्ग देख घबड़ा गये।

सीता और लक्ष्मण कुटी में बैठ कर राम के आने की बाट देख रहे हैं कि इसी समय आर्तध्वनि सुनायी पड़ी। उसे सुन कर सीता घबड़ा गयीं और कहने लगीं:—

सीता—जान पड़ता है प्राणनाथ किसी राक्षस के हाथ में पड़ गये हैं, यह आर्तध्वनि उन्हींकी है। हाय न मालूम वे कैसी विपत्ति में फँसे हुए हैं। वे दुःखियों की भाँति भाई लक्ष्मण और मन्दभागिनी सीता को पुकार रहे हैं। लक्ष्मण शीघ्रता करो। शीघ्र चल कर प्राणनाथ को विपत्ति से छुड़ाओ। क्यों लक्ष्मण! विलम्ब क्यों करते हो? हा, हमारे भाग्य में क्या बदा है! इसको कौन जान सकता है!!

सीता को इस प्रकार उन्मत्तों के समान विलाप करते देख धीर और बुद्धिमान् लक्ष्मण समझाने लगे। उन्होंने कहा:—

लक्ष्मण—श्रीरामचन्द्र को कहीं भय नहीं है। वीर शिरोमणि राम इस प्रकार दुःखियों के समान नहीं चिल्ला सकते हैं। इस त्रिलोक में ऐसा कोई नहीं है जो उनको युद्ध में हरा सके। यह किसी राक्षस की माया है, रामचन्द्र को दुःख देने के लिये लक्ष्मण और सीता को आर्तनाद से पुकारने वाला कोई राक्षस है। आप स्थिर हों, घबड़ाँय नहीं। घबड़ाने से अनर्थ होने की सम्भावना है।

लक्ष्मण के समझाने बुझाने पर भी सीता का चित्त स्थिर न हुआ। उनके समझाने से सीता के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। जिसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता है वही सन्देह सीता के हृदय में उत्पन्न हुआ। सीता का स्त्री-हृदय पति की

विपत्ति की कल्पना कर के लक्ष्मण के अनुपम गुणों को भूल गया। उन्होंने लक्ष्मण को रामचन्द्र का सौतेला भाई समझा। वे लक्ष्मण का तिरस्कार करने लगीं। इस अवस्था में भी लक्ष्मण को अटल और निश्चिन्त देख कर, सीता का क्रोध और भी बढ़ गया। उनकी आखें लाल हो गयीं। उन्होंने कठोर स्वर से कहा:—

सीता—नृशंस! कुलाङ्गार!! तू यह बड़ा पाप कर रहा है। जान पड़ता है, रामचन्द्र का अमङ्गल होना तू अपने लिये अच्छा समझता है। इसी कारण उन पर सङ्कट पड़ने पर भी तू चुपचाप बैठा है। तू जो यह पाप कर रहा है, यह तेरे लिये नयी बात नहीं है। तू कपटी है, क्रूर है और ज्ञाति का शत्रु है। दुष्ट! तू भरत के आदेश अथवा अपनी ही इच्छा से विपत्ति के समय रामचन्द्र की सहायता के लिये नहीं जा रहा है। परन्तु स्मरण रख तेरा मनोरथ किसी प्रकार पूरा नहीं होगा। मैं तेरे सामने अभी प्राण छोड़ती हूँ। मैं राम के विना एक मुहूर्त्त भी नहीं जी सकती।

भावी भी क्या ही प्रबल होती है! सती सीता भी भावी के अधीन हो गयीं। लक्ष्मण पर सीता का सहसा सन्देह करना आश्चर्य-जनक जान पड़ता है सही, परन्तु इससे सीता के चरित्र में या मन में किसी प्रकार का कलङ्क नहीं लग सकता। पतिव्रता सीता अपने पति के अमङ्गल को कैसे देख सकती हैं। चाहे वह अमङ्गल झूठा ही हो, परन्तु जो पतिव्रता-हृदय

स्वप्न में भी पति का अमङ्गल देख काँप जाता है, वह ऐसी घटना देख सुन कर, भला कैसे स्थिर रह सकता है?

लक्ष्मण के मन में सीता के वाक्यों से बड़ा कष्ट हुआ तथा क्रोध उपजा, परन्तु उस वीर ने अपने क्रोध को रोका। वे हाथ जोड़ कहने लगे:—

लक्ष्मण—देवि! मैं तुम्हारी बातों का उत्तर नहीं दे सकता; क्योंकि यह मेरे अधिकार के बाहिर की बात है। ऐसी बातों की कल्पना करना स्त्रियों के लिये आश्चर्य की बात नहीं है। प्रायः स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा देखा जाता है। तुम्हारी बातें बाण के समान मेरे हृदय को छेदती हैं। वन-देवता इस बात की साक्षी हैं कि मैं तुम्हारे कल्याण की बातें कह रहा था। परन्तु तुमने उन बातों को नहीं समझा। मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करता था, परन्तु तुमने अपने वाक्य-बाणों से मेरे कार्य में विघ्न डाला। मालूम होता है तुम्हारे ऊपर कोई बड़ी भारी विपत्ति आने वाली है। अब जहाँ रामचन्द्र जी हैं लक्ष्मण भी वहीं जाता है। तुम्हारा कल्याण हो। वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें। इस समय के अपशकुनों को देख, मेरा चित्त घबड़ाता है। जो हो भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।

सीता लक्ष्मण की बातों का कुछ उत्तर न दे कर रोने लगीं। लक्ष्मण ने उन्हें समझाया और रामचन्द्र जी के समीप जाने के लिये वे वहाँ से चल दिये।

लक्ष्मण के जाने के बाद सीता राम लक्ष्मण के आने का मार्ग देख रही थीं कि इतने में ब्राह्मण वेशधारी एक भिक्षुक आया और दुःखिनी सीता के समीप जा कर खड़ा खड़ा उन्हें देखने लगा। वह भिक्षुक सीता की सुन्दरता पर मोहित हो कर निर्लज्ज के समान सीता के स्वरूप की प्रशंसा करने लगा और उनसे उस घोर वन में एकाकिनी रहने का कारण पूँछा। सीता जी ने, उसे ब्राह्मण समझ कर, अपना हाल कह सुनाया और उसका अतिथि-सत्कार करने के लिये वे उद्यत हुईं। पाद्य अर्घ्य आदि ग्रहण करने की सीता ने उससे प्रार्थना की और कहाः—

सीता—आप ठहर जाँय, हमारे पति वन से अभी आते ही होंगे और कन्दमूल आदि भी लाते होंगे, उनके आने पर आप भोजन यहीं कीजियेगा।

यह कह कर, सीता जी ने उसका परिचय पूँछा। उस दुष्ट ने निडर हो सीता जी को यों उत्तर दियाः—

रावण—जानकी! जिसके प्रताप से देवता असुर मनुष्य आदि सभी डरते हैं, मैं वही राक्षसों का राजा रावण हूँ। तुम्हारी सुरन्दता पर मैं मोहित हुआ हूँ। मेरी बहुत सी सुरूपवती स्त्रियाँ हैं। तुम उनकी प्रधान पटरानी बनो। समुद्र से घिरी लङ्का नाम की हमारी

राजधानी है। महारानी होने पर पाँच सौ सुन्दरी दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। तुम हमसे प्रेम करो, अल्पायु राम के साथ इस घोर जङ्गल में क्यों पड़ी हो? राज्य-सुख भोगो, वनवास के योग्य तुम नहीं हो।

रावण की बातें सुन सीता की अवस्था बदल गयी, उनकी आखें लाल हो गयीं, मुख-मण्डल लाल हो गया, मारे क्रोध के शरीर काँपने लगा। बोलना चाहती हैं, परन्तु मारे क्रोध के बोली नहीं निकलती। उस समय मानों उनके शरीर से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। सीता ने कुपित सिंहिनी के समान गरज कर कहाः—

सीता जी—दुरात्मन्! जो अपनी प्रतिज्ञा पर हिमालय के समान अटल और अचल है, जो समुद्र के समान गम्भीर है, उसी इन्द्र के तुल्य राम के पास मैं रहने वाली हूँ। जो लोकों का आश्रय-दाता हैं, सत्य-प्रतिज्ञ, कीर्तिमान् और सुलक्षण हैं, वेही रामचन्द्र जी मेरे आश्रय हैं। जिनकी बाहु लम्बी हैं, वक्षस्थल विशाल है, मुख पूर्णचन्द्र के समान है, जिनका पराक्रम सिंह के समान है, उन्हीं रामचन्द्र के समीप मैं जाऊँगी। राक्षस! तू शृगाल है, सिंहिनी की अभिलाषा छोड़ दे। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा का कोई स्पर्श नहीं कर सकता है; उसी प्रकार मुझको भी कोई नहीं छू सकता है। तू क्षुधा से

व्याकुल सिंह के मुख में क्यों हाथ डालता है? यह तेरी अभिलाषा गले में पत्थर बाँधे हुए पुरुष के समुद्र तैरने के समान है। धधकते अग्नि को कपड़े में लपेटने और तलवार की धार को जीभ से चाटने के बराबर ही तेरा यह मनोरथ है। सिंह और शृगाल में, समुद्र और छोटी नदी में, सोना और लोहे में, हाथी और चूहे में, गरुड़ और काक में और हंस तथा गीध में जो अन्तर है, वही अन्तर राम और तेरे बीच में है। अभी महावीर लक्ष्मण के साथ मेरे पति आते हैं और तुझको उचित दण्ड देते हैं। अरे नीच, दुराचारी तू अभी अपने किये का फल भोगता है। तू मुझको अनाथिनी समझ कर मेरा अपमान करता है। मैं किसी प्रकार तेरे वश नहीं हो सकती। मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी। यदि तू मुझको छूएगा, तो तेरा समूचा परिवार नष्ट हो जायगा।

सीता की बातों को सुन कर, रावण का हृदय थरथराने लगा। उस दुराचारी राक्षस ने सीता की प्रतिकूलता देख, उन्हें बल से अपहरण करना निश्चित किया। भिक्षुक का वेश छोड़ कर, उसने भयङ्कर राक्षस का रूप धारण किया और विलाप करती सीता को पकड़ कर, वह ले चला। उस समय सीता ने बहुत चाहा कि गला दबा कर मर जाऊं, परन्तु रावण के सामने उसकी कुछ वश न चला। सीता को

रावण ने रथ पर बिठला कर, आकाश मार्ग से लङ्का को प्रस्थान किया। उस समय सीता के दुःख का वारपार न रहा। लक्ष्मण की बातें याद कर सीता को और भी दुःख होने लगा। वे उच्चस्वर से विलाप कर कहने लगीं:—

चौपाई।

"हा जगदेक बीर रघुराया।
केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक।
हा रघुकुल सरोज दिननायक॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फल पायेसु कीन्हेउँ रोसा॥

पञ्चवटी में रामचन्द्र के आश्रम के समीप जटायु नामक पक्षिराज रहते थे। वे रामचन्द्र के हितैषी थे। उन्होंने सीता का विलाप सुन कर आकाश की ओर देखा कि राक्षसाधम रावण रामचन्द्र की प्राणोपमा सीता को हर के लेजा रहा है। जटायु रावण से लड़ने लगा, उसने चोंच और नख से रावण को क्षत विक्षत कर दिया। उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रावण क्रुद्ध हुआ और पक्षिराज के पंख उसने काट डाले। उस समय रावण का दूसरा शत्रु नहीं रहा, वह सीता को लेकर बड़े वेग से आकाश मार्ग से लङ्का को चला। सीता हताश हुईं। वे विलाप करती हुईं अवश हिरनी के समान उसके साथ चलीं। कुछ दूर जाने पर सीता ने देखा कि एक पर्वत पर दो चार वन्दर बैठे हैं। रामचन्द्र जी को सूचना मिल जाने की आशा से, उन्होंने अपना कपड़ा और कुछ आभूषण वहाँ गिरा दिये। रावण को जल्दी जाने की चिन्ता लगी थी, अतएव वह सीता का वस्त्रादि गिराना न देख सका।

लङ्का में पहुँच कर रावण ने सीता को अपने महल में रक्खा। पिजड़े में बन्द मृगी के समान असहाया सीता रावण के महल में सिवाय रोने के और क्या कर सकती थीं। वे कभी कभी मूर्च्छित हो जातीं कभी चिल्ला चिल्ला रोतीं। एक तो पति का वियोग और दूसरे दुराचारी रावण का अत्याचार—ये दोनों भयङ्कर दुःख सीता को पीड़ित करने लगे। रावण ने सीता की देख रेख का भार कुछ राक्षसियों को सौंपा और उनके साथ सद्व्यवहार करने का उनसे अनुरोध किया।

राक्षसियों को ऐसी आज्ञा दे कर रावण ने आठ बली राक्षसों को राम लक्ष्मण को मारने के लिये जनस्थान में भेजा और स्वयं सीता को प्रसन्न करने के लिये वह भवन में गया। रावण को आते देख सीता ने अपने और उसके बीच में एक तृण रख दिया और उधर से दृष्टि फेर कर वे ज़ोर से रोने लगीं। यह देख रावण सीता को समझाने लगा, उसने रामचन्द्र की दुर्बलता और दोष बतलाये और अपने ऐश्वर्य प्रभुता सुन्दरता आदि का बहुत बढ़ा कर वर्णन किया।

पति की निन्दा सुन कर, सीता जी से वहाँ भी न रहा गया। वे गरज कर बोलीं :—

सीता—देखो! हमारा यह शरीर अशुद्ध हो गया है, तुम मारो चाहे बाँधो, मैं इस शरीर को रख नहीं सकती, मैं धर्मात्मा रामचन्द्र की धर्मपत्नी हूँ। तू पापी मुझको छू नहीं सकता।

रावण सीता का रामचन्द्र में दृढ़ प्रेम देख चञ्चल हुआ। उसने अपने मन में सोचा कि सीता को कभी भय दिखला

कर, कभी समझा कर, अपने अधीन करना पड़ेगा। अतः भय दिखाते हुए उसने कहा;—

रावण—सीता! बारह महीने तक मैं और देखता हूँ यदि इस बीच में तू हमारे अनुकूल न हुई तो राक्षस तुझको खा जाँयगे।

रावण सीता को अशोक कानन में रखने के लिये राक्षसियों को आज्ञा दे कर, वहाँ से चला गया। सीता भी उस अशोक वन में भय और शोक से व्याकुल हो कर, दिन काटने लगीं।

नवाँ अध्याय।

रामचन्द्र के स्वर में लक्ष्मण और सीता को पुकार कर मारीच तो मर गया; परन्तु इससे रामचन्द्र जी विकल हुए। अनेक प्रकार की चिन्ता और भय से उनका हृदय व्याकुल हो गया। उन्होंने सोचा क्या लक्ष्मण इस आर्तनाद को सुन कर, सीता को अकेली छोड़ कर, यहाँ आवेगा। क्या बुद्धिमान् लक्ष्मण भी मेरे ही समान करेंगे? रामचन्द्र जी ने समझ लिया उन्हींको कष्ट देने के लिये ही राक्षसों ने यह मायाजाल रचा है। इन बातों को सोच कर, रामचन्द्र जी अत्यन्त व्याकुल हुए और कुटी की ओर शीघ्रता से बढ़े। अनेक प्रकार की चिन्ता करते हुए वे शीघ्र जा रहे थे कि इतने ही में उन्होंने सामने से लक्ष्मण को आते देखा। लक्ष्मण को देखते ही वे काँपने लगे। उन्होंने दूर ही से लक्ष्मण से पूँछा:—

श्रीरामचन्द्र—वत्स! तुम पर विश्वास कर के जानकी को अकेली छोड़ कर, मैं आया था और तुम उनको छोड़ कर चले आये, न मालूम इस समय वहाँ क्या हुआ होगा। सम्भव है इस समय सीता का किसी ने अपहरण

किया हो। नहीं तो राक्षसों ने उसे मार कर खा लिया हो। लक्ष्मण! यदि जानकी जीवित होंगी ; तब तो हम पुनः आश्रम में जा सकते हैं, नहीं तो हमारी भी मृत्यु ही समझो। क्योंकि विना जानकी हमारे प्राण रह नहीं सकते।

राम को इस प्रकार व्याकुल देख कर लक्ष्मण ने कहा :—

लक्ष्मण—आर्य! हम अपनी इच्छा से सीता को छोड़ कर नहीं आये हैं।

इतना कह कर, लक्ष्मण ने आदि से अन्त तक सभी बातें कह सुनायीं। सीता के क्रोध और तिरस्कार के कारण लक्ष्मण वन में उनको अकेली छोड़ कर आये हैं, यह बात सुन कर, रामचन्द्र दुःखी हो कर बोले :—

श्रीरामचन्द्र—भाई! सीता के क्रोध के कारण तुम्हें हमारी आज्ञा का उलङ्घन करना उचित न था, तुम्हारा यह काम नीति विरुद्ध हुआ है।

ऐसे ही बात चीत करते करते वे आश्रम में पहुँचे, सीता के न रहने से आश्रम श्रीहीन हो चुका था। रामचन्द्र का सन्देह ठीक निकला। आश्रम में सीता नहीं हैं। राम और लक्ष्मण ने सीता को आश्रम के चारों ओर ढूँढ़ा, पर्वत, पर्वत की कन्दरा, गोदावरी का तीर आदि सभी स्थान ढूँढ़ डाले, परन्तु सीता का कहीं पता नहीं। सीता को कहीं न देख कर, रामचन्द्र मूर्च्छित हुए, लक्ष्मण ने किसी प्रकार उनकी मूर्च्छा हटायी और उन्हें ढाँढ़स बँधाया। उन लोगों ने सीता को ढूँढ़ना निश्चय किया और वे दोनों वहाँ से चले।

वे सीता को वन में ढूँढ़ने लगे। थोड़ी दूर जाने के बाद रामचन्द्र जी ने रुधिर से आर्द्र जटायु को देखा। उन्होंने समझा कि इसीने सीता को मार डाला है, अतएव उसके मारने के लिये उन्होंने धनुष चढ़ाया। यह देख कर जटायु ने उन्हें रोका और सीता के हरण किये जाने की सभी बातें कह सुनायीं। रावण द्वारा सीता का हरा जाना, रावण के साथ अपना युद्ध करना आदि सभी बातें कह कर, जटायु ने इस लोक की अपनी लीला समाप्त की।

रामचन्द्र अपने हितैषी जटायु की मृत्यु से अत्यन्त दुःखित हुए और लक्ष्मण की सहायता से जटायु का चिता-संस्कार करने के पश्चात्; रामचन्द्र ने गोदावरी में स्नान और तर्पण कर के सीता को ढूँढ़ने के लिये दक्षिण की यात्रा की। कुछ दूर चलने पर, वे एक गहन वन में गये। उस वन का नाम था क्रौञ्चवन। उस वन में उन लोगों ने सीता को खूब ढूँढ़ा, परन्तु कुछ पता नहीं लगा। वहाँ से चल कर मतङ्गाश्रम नामक एक सघन वन में उन लोगों ने सीता का अन्वेषण करने के लिये प्रवेश किया, परन्तु वहाँ उनको एक और नयी विपत्ति का सामना करना पड़ा। कवन्ध नामक राक्षस उनका माँस खाने की इच्छा से उनकी ओर दौड़ा और अपनी लम्बी लम्बी बाहों से उन दोनों भाइयों को पकड़ लिया। उसके हाथ में पड़ कर, लक्ष्मण थोड़ा घबड़ाये सही, परन्तु रामचन्द्र जी ने उन्हें उत्साहित किया। पुनः दोनों भाइयों ने बल पूर्वक उसकी बाहें तोड़ डालीं। इससे वह कटे पेड़ के समान भूमि पर गिर पड़ा। उसने अपनी मृत्यु आयी देख, राम और लक्ष्मण का परिचय पूँछा। परिचय पाकर, रावण द्वारा सीता का हरा जाना, ऋष्यमूक पर्वत के राजा सुग्रीव से मित्रता

करने से इस कार्य में लाभ और ऋष्यमूक जाने का मार्ग बता कर, वह मर गया। कवन्ध के मरने के पश्चात् उसकी प्रार्थना के अनुसार हाथ के तोड़े सूखे काष्ठों की चिता बना कर उसका अग्नि से संस्कार किया और पुनः अस्त्र शस्त्र ले कर वे निर्भयता के साथ ऋष्यमूक पर्वत की ओर गये। अनेक भयानक वन और पर्वत डाँकते हुए एक पर्वत पर उन लोगों ने रात वितायी और प्रातःकाल होते ही वे पम्पा नामक सरोवर के तीर पर पहुँचे। उस सरोवर के समीप ही शवरी नाम की एक तपस्विनी का आश्रम था। रामलक्ष्मण उसके आश्रम में गये और उसे देख प्रसन्न हुए। वह तपस्विनी भी रामचन्द्र को देख कर वहुत प्रसन्न हुई और उसने अपने आश्रम में उन महर्षिओं के कङ्काल दिखलाये, जिन लोगों ने मंत्रोच्चारण कर के अपने शरीर का हवन कर डाला था। तदनन्तर, शवरी ने अपनी आयु शेष जान कर, रामचन्द्र के सामने ही अपने शरीर को अग्निकुण्ड में डाल कर जला डाला। अनन्तर रामचन्द्र जी लक्ष्मण के साथ पम्पा के तीर पर आ कर वैठ गये और उसकी शोभा देखने लगे। उन्हें सहसा सीता का स्मरण आ गया। रामचन्द्र जी अधीर हो गये और विलाप करने लगे। यह देख लक्ष्मण ने समझाया :-

लक्ष्मण—यदि आप इस प्रकार विलाप करेंगे, तो सीता का मिलना कठिन हो जायगा। विपत्ति के समय में धैर्य्य और पराक्रम से काम लेना होता है। यदि आप इतने अधीर होंगे, तो दुष्ट रावण को दण्ड कौन देगा? इस समय जानकी के उद्धार और रावण को दण्ड देने का प्रबन्ध करना चाहिये।

श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मण की बातों को आदर पूर्वक ग्रहण किया, और वे ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले।

पम्पा सरोवर के समीप ही ऋष्यमूक पर्वत था, कपि-राज सुग्रीव ने ऊपर ही से अस्त्रधारी रामलक्ष्मण को आते देखा। इनको देख, वे डर गये। उन्होंने अपने मंत्रियों से डर का कारण बता कर, सम्मति पूँछी। अनन्तर सब की सम्मति से हनुमान नामक एक वानर रामलक्ष्मण का विशेष परिचय और आने का कारण जानने के लिये, उनके पास भेजे गये। उसने नम्रता पूर्वक उनका परिचय पूँछा। अनेक बार पूँछने पर भी जब रामचन्द्र जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया; तब उन्होंने अपना और सुग्रीव का परिचय दिया। वे बोले:—

हनुमान—सुग्रीव वानरों के राजा और धार्मिक हैं। बड़े भाई वाली ने उनको राज्य से निकाल दिया है। इसी कारण वे इधर उधर मारे मारे फिरते हैं। मैं उन्हींकी आज्ञा से आप लोगों का परिचय जानने के अर्थ आया हूँ।

हनुमान की बातें सुन कर, राम और लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। जिनको वे ढूँढ़ते थे, वे ही महाबली सुग्रीव उनसे मित्रता करना चाहते हैं; यह सुन कर वे और भी प्रसन्न हुए। रामचन्द्र ने व्याकरण से शुद्ध गम्भीरार्थक बातों को सुन, प्रसन्नता प्रकट की और लक्ष्मण को उनसे बात चीत करने के लिये आज्ञा प्रदान की। लक्ष्मण ने हनुमान के प्रश्न के उत्तर में अपना परिचय दिया और कबन्ध के साक्षात्कार आदि का हाल सुनाते हुए कहा:—

लक्ष्मण—कवन्ध के कहने के अनुसार हम लोग महात्मा सुग्रीव से मैत्री करने की इच्छा से यहाँ आये हैं। दुरात्मा रावण ने सीता को हर लिया है, हम लोग नहीं जानते कि रावण कहाँ रहता है। सुग्रीव को सब स्थान मालूम हैं, उनसे मैत्री होने पर सीता का पता लग जाना बहुत सम्भव है। इसीके लिये हम दोनों भाई यहाँ आये हैं।

हनुमान ने लक्ष्मण की बातें सुन कर, उन्हें उचित आशा और उत्साह दिलाया और वीर सुग्रीव की बड़ी प्रशंसा की। अनन्तर उन दोनों भाइयों से ऊपर चलने के लिये अनुरोध किया और आज्ञा पा कर, उनको कन्धे पर बैठा कर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचा दिया। हनुमान द्वारा राम-लक्ष्मण का यथार्थ परिचय पाकर, सुग्रीव ने रामचन्द्र से कहा :—

सुग्रीव—राम! हनुमान से मैंने आपके गुण सुने हैं, आप तपस्वी और धर्मात्मा हैं। सभी पर आपका प्रेम है। मैं वानर हूँ, आपने मेरे साथ मित्रता करने की इच्छा प्रकाशित कर के, मुझे सम्मानित किया है। यदि आप मेरे साथ मित्रता करना चाहते हों, तो मेरा हाथ थामिये और अटल अचल प्रतिज्ञा कीजिये।

रामचन्द्र ने सुग्रीव की बातों पर प्रसन्न होकर, उनका हाथ पकड़ करके आलिङ्गन किया। इसी समय हनुमान ने अग्नि जलाया और अग्नि को साक्षी कर के, उन दोनों में परस्पर

मित्रता स्थापित हुई। पुनः उन्होंने अग्नि की प्रदक्षिणा की। उन दोनों में आपस में प्रीति स्थापित हुई।

एक दिन सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र किसी वृक्ष की छाया में बैठ कर, परस्पर अपने सुख दुःख की कथा कहते थे। इतने में सुग्रीव ने कहा :—

सुग्रीव—सीता आकाश अथवा पाताल ही में क्यों न हो; उनको ला कर मैं आपके चरणों में समर्पित करूँगा। आप घबड़ाय नहीं, शोक न कीजिये। जो मैं कहता हूँ उसके विपरीत कभी नहीं हो सकता है।

सीता की बात कहते कहते सुग्रीव को कुछ स्मरण हो आया। वह वहाँ से उठ कर गये और कुछ गहने और एक कपड़े का टुकड़ा ला कर रामचन्द्र जी के सामने रखा। रामचन्द्र जी ने उन गहनों को अच्छी तरह पहचान लिया कि ये गहने और कपड़ा सीता ही के हैं। गहनों को देख, रामचन्द्र का दुःख-समुद्र उमड़ आया। वे रोते रोते लक्ष्मण से बोले :—

श्रीरामचन्द्र—लक्ष्मण! देखो जब सीता को राक्षस हर कर लिये जाता था, तब ही उसने इन गहनों को फेंक दिया होगा।

लक्ष्मण—और गहनों को तो मैं पहचान नहीं सकता; हाँ नूपुर अवश्य पहचानता हूँ। क्योंकि प्रतिदिन प्रणाम करते समय मैं इन्हें देखता था।

रामचन्द्र को व्याकुल देख सुग्रीव ने कहा :—

सुग्रीव—दुःख करने से कुछ भी नहीं होगा, बुद्धिमान् पुरुषार्थ द्वारा कार्य सिद्ध करना ही उत्तम समझते हैं। मैं भी विपत्ति में फँसा हूँ। वाली ने मेरी स्त्री और राज्य छीन कर मुझे निकाल दिया है, और मेरे दुःख की भी सीमा नहीं है। तथापि हम धीरता से उस दुःख को दूर करने का उपाय कर रहे हैं।

सुग्रीव की बातों से रामचन्द्र जी ने अपने को सम्हाला और वे कहने लगे :–

श्रीरामचन्द्र—सुग्रीव, तुम्हारी बातों से मेरे दुःख का बोझा हलका हो गया। विपत्ति काल में तुम्हारे जैसा मित्र मिलना बड़े भाग्य की बात है। इस समय जानकी का पता लगाना और उस दुष्ट राक्षस को मारना; ये दो काम तुमको करने होंगे। इसके पश्चात्, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँगा, सो तो स्पष्ट कहो।

सुग्रीव–आपके समान जिसका सहायक हो, उसको अलभ्य कुछ भी नहीं है। आपकी सहायता से इन्द्र का राज्य भी प्राप्त हो सकता है। मेरा शत्रु बली है, वह महाबली है, उसने स्त्री और राज्य छीन लिया है, उसीके डर से हम इस पर्वत पर रहते हैं।

रामचन्द्र ने सुग्रीव के वचन सुन कर, वाली का बध करने की प्रतिज्ञा की और एक बाण से एक ही साथ सात तालों

को छेद कर के अपने बल का परिचय कराया। यह देख सुग्रीव तथा और वानर रामचन्द्र के बल की प्रशँसा करने लगे। वाली का बिना वध किये और अपना राज्य बिना पाये सुग्रीव रामचन्द्र के कार्यों में उचित सहायता न दे सकते; इस बात को सोच कर, रामचन्द्र ने सब से पहले सुग्रीव को राजा बनाने की प्रतिज्ञा की और उसी दिन वाली से युद्ध करने के लिये उन्होंने सुग्रीव को भेजा। सुग्रीव प्रसन्न हुए और रामचन्द्र के साथ किष्किन्धा गये। नगर के द्वार पर जा कर उन्होंने युद्ध के लिये वाली को ललकारा, सुग्रीव का सिंह-नाद सुन कर, वाली निकला। दोनों भाइयों में घोर युद्ध होने लगा। रामचन्द्र जी एक वृक्ष की ओट में छिप कर देखते थे, परन्तु उन्होंने वाली पर बाण नहीं छोड़ा, क्योंकि दोनों भाई एक ही समान थे। युद्ध करते हुए वाली को वे पहचान न सके।

सुग्रीव कुछ देर तक लड़ते रहे। वाली के प्रहार से उनका शरीर क्षत विक्षत हो गया। सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत की ओर भाग गये। ऋषि के शाप के कारण वाली वहाँ नहीं जा सकता था। रामचन्द्र और लक्ष्मण सुग्रीव के समीप गये, सुग्रीव लज्जा और अपमान से मर रहे थे। रामचन्द्र को देख वे उन्हें धिक्कारने लगे, परन्तु रामचन्द्र ने उधर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने कहा:—

श्रीरामचन्द्र—सखे! क्रोध मत करो, हमारे शर न छोड़ने का कारण सुनो। तुम दोनों भाइयों का आकार एक ही सा है, उस समय हम वाली को पहचान न सके। इसी कारण प्राण-नाशकारी अव्यर्थ बाण हमने नहीं छोड़ा।

> कहीं ऐसा न हो कि पीछे से हम लोगों को पछताना पड़े । मित्र ! अधिक मैं क्या कहूँ, मैं लक्ष्मण और जानकी के साथ तुम्हारे ही आश्रय में हूँ । इस वन में तुम ही हमारे सहायक हो । इस वार जा कर और निर्भय हो कर, तुम युद्ध करो, इस वार तुम देखोगे कि एक ही वाण में वाली भूमि पर पड़ा तड़फड़ा रहा है ।

यह कह कर पहचान के लिये रामचन्द्र ने सुग्रीव को एक पुष्पमाला दी।

पुनः यह दल किष्किन्धा नगरी के द्वार पर पहुँचा, सुग्रीव ने गर्ज कर रणभूमि में उतरने के लिये वाली को बुलाया । सुग्रीव की धृष्टता देख वाली को वड़ा क्रोध आया । वह अति शीघ्रता से वाहर निकलने लगा । तारा वाली की स्त्री का नाम था, वह पतिव्रता और बुद्धिमती थी । पराजित हो कर भी, पुनः लड़ने के लिये सुग्रीव के आने से तारा के हृदय में सन्देह हुआ । उसी समय उसे एक वात याद आयी, उसने युवराज अङ्गद से राम लक्ष्मण के साथ सुग्रीव की मित्रता का हाल सुना था । रामलक्ष्मण वीर पुरुष हैं, सम्भव है, उन्हींके उत्साह से उत्साहित हो कर, सुग्रीव पुनः लड़ने के लिये आया है । राम की सहायता पाने से सुग्रीव वाली को मार सकेगा, इसकी सम्भावना भी की जा सकती है । इन्हीं वातों को सोच कर, वह वाली से न जाने का अनुरोध करने लगी और उसने अपनी आशङ्का भी कह डाली । परन्तु वाली तेजस्वी और वीर था । वह स्त्री का कहना कब मानने वाला था ? राम के विषय में उसने कहा :—

वाली–रामचन्द्र धर्मात्मा और कर्तव्य-परायण हैं, वे पाप कर्म में कभी लिप्त नहीं हो सकते।

तारा को समझा बुझा कर, वाली नगर से बाहर हुआ। वाली और सुग्रीव का युद्ध आरम्भ हुआ। वाली के मुक्कों से सुग्रीव का प्राण निकलने लग जाता था। सुग्रीव को अत्यन्त पीड़ित देख कर, रामचन्द्र ने पेड़ के पीछे से वाली को लक्ष्य कर के बाण छोड़ा। बाण के लगते ही कटे वृक्ष के समान वाली भूमि पर गिर गया। यह देख रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ धीरे धीरे वाली के समीप गये। उनको देख कर वाली ने कहा:—

वाली–राम! मैं तो तुमको वीर और धर्मपरायण जानता था। तुमको ऐसा कापुरुष मैं नहीं जानता था। सामने से युद्ध करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। एक असावधान और निरपराध व्यक्ति पर बाण छोड़ कर, तुमने क्षत्रिया-धम का काम किया है। तुमको राज कार्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है। यदि सीता का उद्धार करना ही तुमको इष्ट था, तो मुझसे कहते, मैं सीता और रावण को ला देता।

इसी प्रकार उसने रामचन्द्र का बहुत तिरस्कार किया। रामचन्द्र ने कहा:–

श्रीरामचन्द्र–यदि तुम यथार्थ विचार कर के देखोगे तो कभी मेरी निन्दा नहीं कर सकते। सुग्रीव हमारा मित्र है। उससे मैंने तुम्हारे वध करने की प्रतिज्ञा की थी, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना नितान्त आवश्यक है। तुमने धर्म

शास्त्र की आज्ञा का तिरस्कार कर के अपनी भाई की स्त्री रूमा को अपने यहाँ रक्खा है। शास्त्र से पुत्रवधू और भ्रातृवधू कन्या के समान हैं। इन पर अत्याचार करने वाले महापापियों को दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य है। यह राज्य रघुवंशियों का है। पापियों का रहना राजा के लिये हानिकारी है; अतएव मैंने धर्मरक्षा के लिये ही तुम्हें मारा है।

वाली के मारे जाने का समाचार बिजली के समान बहुत शीघ्र चारों ओर फैल गया। इस दुःसम्वाद को रोते हुए अङ्गद और तारा ने भी सुना। तारा रोती हुई अनाथ अङ्गद को साथ ले कर, रणभूमि में पहुँची। वाली की अवस्था देख कर, उसका दुःख और भी बढ़ गया। उसका विलाप सुन कर भ्रातृघाती सुग्रीव का भी कठोर-हृदय पिघल गया। वह भी रोने लगा। राम और लक्ष्मण भी इनकी अवस्था देख कर, अत्यन्त दुःखित हुए। अपना अन्त बहुत ही समीप आया देख, वाली ने सुग्रीव को अपने समीप बुलाया और वह कहने लगा:—

वाली—सुग्रीव! पाप या दुर्बुद्धि के कारण जो कुछ मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है—उसको तुम अपराध न समझना। क्योंकि वह दुर्बुद्धि वश हुआ है। हमारे भाग्य ही में भ्रातृ-प्रेम के साथ राज्यसुख नहीं बदा था। इससे यह विषमय घटना हुई है। जो हुआ सो हुआ आज से वनवासियों की रक्षा

का भार मैं तुम्हें सौंपता हूँ । मैं इसी समय
तुमसे विदा होता हूँ ।

यह कह कर, वाली ने अङ्गद और तारा सुग्रीव को सौंप कर और रामचन्द्र के निकट क्षमा प्रार्थना कर के, वीरों की गति पायी ।

बाली की मृत्यु से राजधानी में शोक छा गया । बाली का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया । अनन्तर किष्किन्धा के सिंहासन पर सुग्रीव का राज्याभिषेक हुआ । अपने पिता की आज्ञा के अनुसार रामचन्द्र किष्किन्धा में नहीं गये । अङ्गद को युवराज का पद दिया गया । उस समय वर्षा ऋतु आ गयी थी। वर्षा ऋतु में युद्धयात्रा वर्जित होने के कारण, रामचन्द्र जी सुग्रीव को राजधानी ही में रहने की आज्ञा दे कर, आप प्रस्रवण नामक पर्वत पर चले गये और वृष्टि से रक्षा पाने के लिये, उन्होंने एक गुहा में वास करना निश्चित किया। परन्तु कार्तिक मास के प्रारम्भ ही में रावण को दण्ड देने के लिये सुग्रीव को अपने पास वुलाया और तभी स्वयं भी इस विषय में कुछ करने का निश्चय किया ।

राम और लक्ष्मण उसी गुहा में रहने लगे । रामचन्द्र के लिये विना सीता के वर्षाकाल विताना कठिन हो गया । मेघों का गर्जना और वृष्टिधारा से उनको बहुत सी पुरानी बातें स्मरण हो आती थीं । इस समय सीता की क्या अवस्था होगी, वह जीती होगी कि नहीं ? इत्यादि बातें सोच कर, वे व्याकुल ही नहीं हो जाते थे; बल्कि फूट फूट कर रोने भी लग जाते थे, परन्तु धीर लक्ष्मण सर्वदा सावधान रहते थे। वे बड़ी योग्यता से अपना कर्तव्य पालन करते थे और रामचन्द्र को धीरज बँधाते थे।

देखते देखते वर्षाऋतु समाप्त हुई, शरद्‌काल आया। लङ्का पर चढ़ाई करने का समय भी आया; परन्तु अभी तक सेना का कुछ प्रवन्ध नहीं हुआ है—सुग्रीव राज्य पा कर विलास कर रहे हैं। अपने आमोद प्रमोद में अपने दुःखी मित्रों को भूले हुए हैं। जिसकी सहायता पा कर वे राजा हुए हैं, आज उन्हींके काम में इतनी उदासी! सुग्रीव का ऐसा आचरण देख, रामचन्द्र ने लक्ष्मण को सुग्रीव की ख़बर लेने के लिये भेजा।

लक्ष्मण धधकते अग्नि के समान क्रोध से उग्रमूर्त्ति धारण कर, किष्किन्धा नगरी के द्वार पर उपस्थित हुए। धनुषबाण लिये उन्हें आते देख, मारे भय के वानर भागने लगे। युवराज अङ्गद अति विनय से डरते डरते लक्ष्मण के समीप आये और उनके आने का कारण पूँछ कर, सुग्रीव को उनके आने की ख़बर दी। सुग्रीव उस समय विलास-भवन में मग्न थे। मद्य में चूर सुग्रीव ने सहसा लक्ष्मण के आने का समाचार सुन कर, लक्ष्मण को लाने और उनका क्रोध शान्त करने के लिये, तारा को भेजा। लक्ष्मण स्त्री को आते देख, द्वार के एक किनारे हो गये और उन्होंने अपना सिर नीचे कर लिया। तारा ने विनय पूर्वक कहा :—

तारा—सुग्रीव! आपके मित्र हैं; अतएव वे आपके भाई के समान हैं। अपराधी भाई पर, बुद्धिमान् क्रोध नहीं करते। सुग्रीव विषयों में फँस कर मूढ़ बन गये हैं, यह ठीक है; परन्तु रामचन्द्र का उपकार वे नहीं भूले हैं। रावण-वध और सीता के उद्धार के लिये वे सर्वदा चिन्तित रहते हैं। उन्होंने सेना

तैयार करने की आज्ञा दी है। आप प्रसन्न हों और मेरे साथ चल कर सुग्रीव से रामचन्द्र की आज्ञा सुनावे।

तब लक्ष्मण सुग्रीव के समीप गये। उनको विलासमग्न देख, घृणा पूर्वक बोले :-

लक्ष्मण—सुग्रीव! रामचन्द्र ने वाली को मार कर, तुमको राज्य और स्त्री दिलवायी है; परन्तु तुम अकृतज्ञों के समान शीघ्र ही उनके सब उपकार भूल गये। युद्ध यात्रा का समय हो चुका है, रामचन्द्र जी की सीता के वियोग से दिन दिन दशा बिगड़ती जाती है। यह समय तुम्हारे उपकार करने का है; परन्तु तुम विलास में मग्न हो। स्मरण रखो, यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पालन नहीं करोगे, तो वाली के मार्ग का तुमको भी अनुसरण करना पड़ेगा।

लक्ष्मण की बातों से सुग्रीव को बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने नम्रता से उन्हें प्रसन्न किया। लक्ष्मण ने क्रोध से सुग्रीव का जो अपमान किया था, उसके लिये वे दुःखी हुए और पुनः उनका आदर कर के उन्हें प्रसन्न किया। इसके अनन्तर हनुमान् आदि मंत्रियों को सेना एकट्ठी करने की सुग्रीव ने आज्ञा दी। सेना संग्रह करने के लिये, वानर चारों ओर प्रस्थित हुए।

सुग्रीव और लक्ष्मण प्रश्रवण पर्वत पर रामचन्द्र जी के निकट उपस्थित हुए। रामचन्द्र जी ने अपने मित्र की युद्ध-योजना देख, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। थोड़े ही दिनों में वानरों

की सेना किष्किन्धा में आ गयी। सुग्रीव ने सीता का पता लगाने के लिये चारों दिशाओं में वानरों को भेजा। जो वानर दल दक्षिण गया था, उसमें महावीर हनुमान्, युवराज अङ्गद और मंत्री जाम्बवान् थे। सीता को खोजने के लिये सैन्यदलों को विदा करते समय सुग्रीव ने कहाः—

सुग्रीव—एक महीने के भीतर ही सीता का समाचार ले कर, तुम लोग लौट आओ। यदि इस अवधि में तुम लोग सीता का पता नहीं लगा सकोगे; तो इसका भारी दण्ड तुम लोगों को भोगना पड़ेगा।

महीना पूरा होने पर आया; वानरी सेना भी निराश हो कर लौटने लगी। विनत, शतवलि, सुसेन आदि सेनापति लौट आये, परन्तु हनुमान् अङ्गद आदि वीर जिस दल में थे, वह दल अभी तक नहीं आया। अतएव रामचन्द्र भी एक वार ही निराश नहीं हुए।

अङ्गद और हनुमान् ने दक्षिण की ओर सीता को बहुत ढूँढ़ा, परन्तु कहीं पता नहीं लगा। इसी प्रकार घूमते घूमते एक महीने की अवधि पूरी हुई। तब उन लोगों ने सुग्रीव और रामचन्द्र के भय से प्राण देने ही का निश्चय किया और समुद्र के किनारे जा कर, अनशन व्रत करने लगे। वहीं एक पर्वत पर सम्पाति नामक विहगराज रहते थे। वे जटायु के भाई थे। वे वानरों को खाने के लिये उनके समीप गये; परन्तु उनसे जटायु का मारा जाना और रावण के द्वारा सीता का हरा जाना—इन दो दुःख संवादों को सुन कर, वे अत्यन्त दुःखित हुए। अनन्तर सम्पाति ने सीता का इसी मार्ग से जाना बताया और रावण के रहने के स्थान का पता बताया।

समुद्र डाकने पर सीता का पता मिल सकता है इस बात को सुन कर, वानरी-दल बहुत प्रसन्न हुआ। बड़े बड़े बानर समुद्र पार करने का, उद्योग करने लगे; परन्तु कोई इस बड़े कार्य में समर्थ नहीं हो सका, अनन्तर महावीर हनुमान् ने अपनी अलौकिक शक्ति पर भरोसा रख कर, समुद्र पार जाने की प्रतिज्ञा की। सब ने उनका आदर और उनके बल पर विश्वास किया। हनुमान् एक पर्वत पर चढ़ गये और वहाँ से सभी को अभिवादन कर के वे कूद गये, देखते ही देखते वे सब की आँखों की ओट में चले गये।

दसवाँ अध्याय।

त्रिकूट नामक एक पर्वत पर, लङ्का-नगरी वसी हुई थी। त्रिकूट पर्वत समुद्र के मध्य में था। लङ्का की शोभा अवर्णनीय है, लङ्का की ऊँची ऊँची अटारियाँ सभी सोने की वनी हुई थीं। सुवर्ण के सतमहले मकान दर्शकों को मोहित करते थे। दुराचारी रावण इसी लङ्का का अधिपति था। रावण एक विश्वश्रवा नामक ऋषि के औरस और केकसी राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। रावण के दो और भाई थे। उनके नाम थे कुम्भकर्ण और विभीषण। कुम्भकर्ण लम्बे चौड़े डीलडौल का था और उसकी आकृति भयानक थी। वह भी रावण के समान ही दुराचारी था। परन्तु उसका छोटा भाई विभीषण जितेन्द्रिय, सदाचारी और धार्मिक था। वह रावण के पाप कर्मों को देख, सर्वदा साहस कर के उसके अत्याचारों की निन्दा और उससे वचने के लिये उपदेश दिया करता था। रावण के पुत्र का नाम मेघनाद था, वह अपने पिता से भी बढ़ कर दुरात्मा और अधम था।

रावण यथेच्छाचारी, इन्द्रिय-परवश और लम्पट था। भोग-वासना चरितार्थ करने के लिये ही उसने तपस्या की थी। धर्म की उपेक्षा कर, उसने सुन्दरी सुन्दरी स्त्रियों को

हर कर के, अपना घर भर रखा था। उसकी पटरानी का नाम मन्दोदरी था। मन्दोदरी यद्यपि बुद्धिमान् स्त्री थी, तथापि वह अपने पति का मन पापों की ओर से नहीं हटा सकी। सूपनखा रावण की बहिन थी, उसीकी सम्मति से रावण ने सीता का अपहरण किया था। दुराचारी भाई की बहिन भी दुराचारिणी थी। उसने अपने भाई को अपना स्वार्थ सिद्ध न होने के कारण सीता जी का हरण करने के लिये प्रोत्साहित किया। सीता की अलौकिक सुन्दरता की उसने प्रशंसा की। दुराचारी रावण का मन डावाँडोल हो गया। छल प्रपञ्च रच कर वह सीता को हर लाया। यह बात हमारी वाचिका और वाचकों को मालूम ही है।

यद्यपि सीता अबला थीं; यद्यपि उनके तेज के सामने दिग्विजयी रावण को नीच देखना पड़ा, यद्यपि वह सीता से डरता नहीं था, यदि डरता तो सीता को हर ही कैसे सकता था; तथापि सीता का अलौकिक तेज और पवित्रता के सामने उसे हार खानी पड़ती थी। पुण्य पाप को दबा देता है, साधु के सामने चोर नहीं ठहर सकते। यह ठीक है कि रावण ने सीता को हर लिया, परन्तु सीता के हृदय पर वह कुछ भी अधिकार नहीं कर सका। अभी भी उसकी नगरी में रह कर, असहाया भी सीता उसको तिरस्कृत और उसके पापपूर्ण मनोरथों की निन्दा करती थीं। वे रावण को गर्जन पूर्वक कहती थीं:—

सीता—अरे अधम रावण! मुझे छूना नहीं, यदि छुएगा तो मैं प्राण छोड़ दूँगी। रामचन्द्र की पतिव्रता धर्म-पत्नी को छूने की योग्यता तुममें नहीं है।

रावण सीता को शून्य कुटी से निर्लज्ज एवं भीरु की तरह हर लाया था। उसने सीता को अपने वश में करने के लिये धन, रत्न, आभूषण आदि का लोभ दिखलाया। मार डालने के लिये भय दिखलाया; परन्तु किसी प्रकार भी पतिव्रता सीता अपने निश्चय से नहीं डिगीं, वे अटल बनी रहीं। यह देख, दुष्ट राक्षस को मालूम हुआ कि सीता साधारण स्त्री नहीं है, इसको वश में करना कठिन है।

रावण दिग्विजयी था, पराक्रमी था, वीर था और वह चाहता भी था कि सीता को बलप्रयोग द्वारा वश में कर लूँ। परन्तु धर्म का बल भी तो कुछ वस्तु है। अत्याचारियों का बल धर्मबल के सामने कुछ चीज़ नहीं, बड़े बड़े राजाओं का पराक्रम धर्मबल के सामने कुण्ठित हो जाता है। रावण सीता के निकट जब आता था, तब सीता जी अपने और उसके बीच में एक तिनका रख देती थीं। वह तिनका दुराचारी रावण के लिये पहाड़ था, उस तिनके को डाँक जाना रावण की शक्ति के बाहर था। वह जानता था कि यदि मैं सीता पर बलप्रयोग करूँगा; तो अवश्य ही सीता सुख से मर जायगी और मेरी आशाओं पर पानी फिर जायगा। इसीसे रावण ने सीता को छः महीने की अवधि दी। यदि इतने दिनों में सीता रावण का कहना मान लेगी, तो अच्छी बात है, नहीं तो सीता की मृत्यु तो निश्चित है ही।

लङ्का में आये सीता को दस महीने हुए, रावण की निर्दिष्ट की हुई अवधि के पूरे होने में अब केवल दो ही महीने रह गये हैं। सीता रामचन्द्र के वियोग से दिन दिन क्षीण हो रही हैं। उनका खाना पीना सोना सब छूट गया है। वे सर्वदा रामचन्द्र ही की चिन्ता करती रहती हैं। क्या सीता इस जन्म

मैं फिर रामचन्द्र का दर्शन कर सकूँगी? क्या रामचन्द्र जी अभी तक जीते होंगे? सम्भव है वे हमारे वियोग से मर गये हों। उनके मरने पर भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण भी कभी प्राण नहीं रख सकते; परन्तु यह दुर्भागिनी सीता अभी तक जीवित है! दुःख भोगने के लिये ही सीता के अभागे प्राण नहीं निकलते। सीता की दुर्दशा राम को विदित नहीं है। यदि विदित होती तो वह शत्रु को क्षण भर ही में परिवार के साथ मार डालते। इसी प्रकार की चिन्ता और प्रलापों से सीता के दिन कटते हैं। अपने छुटकारे का कुछ भी उपाय न देख सीता आत्मघात करने की चेष्टा करती है; परन्तु राक्षसियों के कारण कुछ भी वश नहीं चलता। सीता इस समय उन्मत्त हो गयी हैं। कभी वे रोती रोती मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती हैं और कभी इधर उधर दौड़ने लगती हैं।

एक दिन प्रातःकाल सीता जी उदास बैठी थीं; मलिन वेश और मुख सूखा हुआ था, आँखों से आँसुओं की धारा वह रही थी। अत्यन्त भयानक आकृति की राक्षसी सीता की रक्षा करने के लिये चारों ओर बैठी थीं। सहसा उस वन के पक्षियों में कोलाहल मच गया। भयभीत हो कर, पक्षी इधर उधर दौड़ने लगे। सीता जी उधर देखने लगीं। उन्होंने देखा कि एक अद्भुत आकार का प्राणी धीरे धीरे सीता की ओर बढ़ा आ रहा है। सब के देखते देखते वह अद्भुत प्राणी अशोक वृक्ष पर चढ़ गया और सीता की ओर एकटक देखने लगा।

यह अद्भुत प्राणी हनुमान हैं। स्वामि-भक्त महावीर हनुमान ने समुद्र पार कर, लङ्का में सीता को सर्वत्र ढूँढ़ डाला। परन्तु उनका कहीं पता नहीं चला। तब रूप बदल कर

वे रावण के महल में गये। वहाँ उन्होंने अनेक स्त्रियों को देखा, परन्तु उसमें सीता नहीं थीं। रावण के महल की स्त्रियाँ आनन्द से सो रही.थीं, हनुमान ने सोचा रामचन्द्र की धर्म-पत्नी ऐसी विलास-परायणा नहीं हो सकती। वे विरह-मलिना शोक-तप्त सीता को ढूँढ़ते थे, परन्तु पता नहीं चलता था। क्या सीता राम के वियोग से मर गयी? क्या मेरा यहाँ आना व्यर्थ हुआ? किष्किन्धा में जा कर, रामलक्ष्मण और सुग्रीव को हम क्या समाचार सुनावेंगे। सीता की मृत्यु सुन अवश्य ही रामचन्द्र भी प्राण दे देंगे। रामचन्द्र की मृत्यु देख लक्ष्मण और सुग्रीव भी नहीं जी सकते। ऐसी दशा में मेरे जीने ही से क्या लाभ है? ऐसा सोच कर, हनुमान ने मर जाना ही निश्चित किया और वे एक दीवार पर बैठ गये। वहाँ से उन्होंने थोड़ी ही दूर पर एक सघन वन देखा और वे उस वन की ओर बढ़े। वहाँ जा कर उन्होंने एक मलिन-वेश स्त्री को देखा। यद्यपि उस स्त्री का वेश मलिन था, तथापि अलौकिक प्रभा और पवित्रता की छटा उसे प्रकाशित किये हुए थी। हनुमान ने देखा कि—वह स्त्री उसाँसे ले रही है, राहुग्रस्त चन्द्रकला के समान उसका मुख फीका पड़ गया है। उसके दुःख की सीमा नहीं है। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित है। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है। वह एक पीले रङ्ग की मैली धोती पहने हुए थी, शरीर पर गहना एक भी न था।

रामचन्द्र के बतलाये चिन्हों को मिला कर, हनुमान ने सीता को पहचाना। सीता की अवस्था देख हनुमान के दुःख की सीमा न रही। उन्होंने मन ही मन सीता की दृढ़ता, कुलीनता आदि की प्रशंसा की और वे वहीं छिप कर, सीता से बात करने का अवसर खोजने लगे।

उसी अशोक वृक्ष पर हनुमान ने रात्रि बितायी। रात्रि का अवसान होना ही चाहता था कि वेदवेदाङ्ग ज्ञाता ब्रह्म-राक्षसों का समूह वेद गान करने लगा। उसी समय भूषणों की तुमुलध्वनि सुनायी पड़ी। इस बात को जानने के लिये हनुमान वृक्ष के सब से ऊपरी भाग पर चढ़ गये। उन्होंने देखा कि अनेक स्त्रियों के साथ रावण सीता को देखने के लिये आ रहा है। रावण को आते देख, सीता जी संकुचित हो कर बैठ गयीं और उनकी आँखें लाल हो गयीं। असहाया सीता चारों तरफ देखने लगीं। हाय! दुर्दैव!! आज जनक-दुहिता दशरथ-वधू रघु-कुल-चूड़ा-मणि रामचन्द्र की धर्म-पत्नी सीता की यह दशा!!!

रावण सीता के समीप आ कर, मधुर वचनों से उन्हें समझाने लगा। उसने कहा:—

रावण—सीते! तुम मुझको देख कर संकुचित क्यों होती हो? मैं तो तुम्हारा प्रेम चाहते हैं। तुम नहीं चाहती, इसी कारण मैं तुमको छूता तक नहीं। इस प्रकार तपस्वियों के समान कष्ट सहना तुमको उचित नहीं है। तुम सोचो तुम्हारा प्रेम पा कर, तुम्हारे पिता को मैं अतुल धन राशि का स्वामी बना दूँगा। राम न तो तपस्या-बल अथवा विक्रम में और न धन ही में मेरे समान हैं। अतएव तुम मेरे साथ इस रमणीय नगरी की अधीश्वरी बनने के लिये प्रसन्न होओ।

रावण की बातें सुन कर, जानकी फूट फूट कर रोने लगीं। वे सर्वदा रामचन्द्र की चिन्ता करती थीं। बीच में एक तिनका रख कर सीता ने कहा:–

सीता–राक्षसनाथ! तुम मेरी अभिलाषा न करो, तुम अपनी स्त्रियों ही से सन्तोष करो। जिस प्रकार पापियों को मुक्ति पाना कठिन है उसी प्रकार तुम भी मुझे नहीं पा सकते।

यह कहते कहते सीता को बड़ा क्रोध आया। वे क्रोधाग्नि से दग्ध होने लगीं। वे रावण की ओर से मुँह फेर कर, कहने लगीं:—

सीता–देखो! मैं दूसरे की साध्वी सहधर्मिणी हूँ, मुझे अन्य विलासिनी स्त्रियों के समान न समझो। धर्मपालन करो और सदाचारी बनो। राक्षस! अपनी स्त्री के समान दूसरे की स्त्री की भी रक्षा करनी चाहिये। रावण! जिस प्रकार प्रभा सूर्य ही की अनुगामिनी होती है, उसी प्रकार मैं भी राम की अनुगामिनी हूँ। धन ऐश्वर्य के लोभ से तुम मुझे कभी वश नहीं; कर सकते। यदि तुम अपनी नगरी और अपने वंश की भलाई चाहते हो; तो शरणागत-वत्सल रामचन्द्र की शरण में जाओ और उनसे मित्रता करो। यदि तुम मुझको राम के यहाँ लौटा दोगे; तो तुम्हारा मङ्गल है। नहीं तो तुम विपत्ति सहने के लिये तैयार

हो जाओ। रामचन्द्र के शत्रु की त्रिलोक में भी कोई रक्षा करने वाला नहीं है।

सीता की इन बातों को सुन कर, रावण को क्रोध तो अवश्य आया ; परन्तु वह कामान्ध पुनः अनुनय करते करते, अव्यवस्थित उन्मत्त जैसा हो गया। अपनी स्त्रियों के सामने अपना अपमान उसे बहुत अखरा। इससे उसने कहा :—

रावण—आज मैं तुझे क्षमा करता हूँ, अभी दो महीने की अवधि है। यदि इतने दिनों में तू रास्ते पर न आवेगी, तो देख तेरे लिये यह तलवार तैयार है।

इस धमकी से सीता डरी नहीं, उन्होंने कहा :—

सीता—अरे नीच ! जान पड़ता है इस नगर में, तेरा मङ्गल चाहने वाला व्यक्ति एक भी नहीं है। मैं धर्म-शील राम की धर्म-पत्नी हूँ। तेरे अतिरिक्त और कोई भी मेरे विषय में बुरी कल्पना तक भी नहीं कर सकता है। तू मेरे प्रति जो अन्याय-आचरण कर रहा है; उससे तू कैसे छुटकारा पावेगा ? तू हमको कभी छिपा कर नहीं रख सकता। तूने अपने मरने के लिये, पूरा पूरा सामान जुटा लिया है।

रावण से यह नहीं सहा गया। वह तलवार खींच कर सीता को मारने के लिये झपटा। स्त्री-वध करने के लिये उद्यत देख, धान्यमालिनी नाम की एक स्त्री ने उसको हटा लिया, वह रावण को समझा बुझा कर, भवन में ले गयी। रावण जाते

समय राक्षसियों को अपने अपने काम करने के लिये सजग कर गया। राक्षसियों ने सीता को अनेक भय एवं प्रलोभन दिखलाये, परन्तु उन सब का कुछ भी फल नहीं हुआ। उनके सामने ही सीता लङ्का और रावण को अभिशाप देने लगीं। अब सीता को किसी का भय नहीं है, क्योंकि वह मरना ही अपने लिये उत्तम समझती हैं।

अशोक वृक्ष पर बैठ कर हनुमान रावण और सीता का संवाद सुन रहे थे। उसे सुन वे बहुत ही दुःखित हुए और आत्म-हत्या करने के लिये जानकी का सङ्कल्प देख कर, अधीर हो उठे। उन्होंने शीघ्र ही सीता से साक्षात्कार करने का निश्चय किया। क्योंकि उन्होंने विचारा कि यदि ऐसा न करेंगे तो सभी किया कराया व्यर्थ हो जायगा। परन्तु जानकी तो हनुमान को पहचानती ही नहीं हैं। हनुमान रामचन्द्र के भेजे हुए आये हैं, यह बात सीता को जनावे कौन? इसी प्रकार तर्क वितर्क कर के अन्त में हनुमानजी ने निश्चय किया कि सीता से संस्कृत भाषा में बात करने से सम्भव है वे किसी प्रकार का सन्देह करें और उनके सन्देह करने से बड़ी हानि होगी। अतएव प्राकृत भाषा ही में बात करना उत्तम होगा। इस प्रकार सोच कर हनुमान सीता के समीप गये और राम तथा सीता की पूर्व बातों का वर्णन करने लगे। रामचन्द्र की आज्ञा से समुद्र पार कर, हनुमान सीता का समाचार जानने के लिये आये हैं, हनुमान जी ने यह भी कहा।

उस समय दुःखिनी सीता अपने मरने का उपाय सोच रही थीं। सहसा रामचन्द्र जी का संवाद सुन कर, वे अत्यन्त आनन्दित हुईं। हनुमान जी की मीठे बातें सुन कर, वे चारों

ओर देखने लगीं। उन्होंने देखा कि एक भयङ्कर आकार का वानर वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ है। सीता ने हनुमान को पहले कोई राक्षस ही समझा, अतएव वे डर कर चिल्ला उठीं। यह देख हनुमान उनके समीप गये और उनको आश्वासन देने लगे। परन्तु सीता जी को विश्वास नहीं हुआ। तब हनुमान जी ने सीता के हरे जाने से ले कर अपने लङ्का आने तक का वृत्तान्त और रामचन्द्र और लक्ष्मण का यथेष्ट परिचय दिया। तब सीता जी को विश्वास हुआ। उन्होंने रामचन्द्र और लक्ष्मण का कुशल समाचार पूँछा। हनुमान से रामचन्द्र और लक्ष्मण का वृत्तान्त सुन कर, सीता का कष्ट और भी बढ़ गया, परन्तु उन्होंने अपने को बड़ी धीरता से सम्हाला और रामचन्द्र की अन्य बातें सुनने लगीं। हनुमान जी ने कहा:—

हनुमान—रामचन्द्र जी ने रावण का वध और आपका उद्धार करने की प्रतिज्ञा की है। वे शीघ्र ही लङ्का पर चढ़ाई करेंगे। मुझसे आपका पता पा कर और रावण का वध कर के वे आपको इस दुःख से उबारेंगे। आप घबड़ाय नहीं।

यह कह कर हनुमान जी ने रामचन्द्र की एक अँगूठी सीता को दी। सीता ने उस अँगूठी को पहचाना। उस पर "राम" लिखा था। सीता को अत्यन्त दुःखिनी देख कर, हनुमान ने उनसे अपने साथ चलने की प्रार्थना की। परन्तु सीता ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

सीता ने बहुत ही स्नेह और सरलता पूर्वक कहा:—

सीता—वीर ! हम पति-भक्ति के अनुरोध से अन्यपुरुष का स्पर्श उचित नहीं समझतीं। रावण ने जो हमारा स्पर्श किया है उसमें हमारा वश नहीं था। इस कारण रामचन्द्र स्वयं आकर हमको ले जाँय यही ठीक है।

हनुमान पतिव्रताओं के योग्य सीता की बातें सुन कर, वहुत ही प्रसन्न हुए। वहुत देर तक अन्य विषयों की बातचीत होती रही। अनन्तर हनुमान ने जाने की इच्छा से रामचन्द्र को विश्वास दिलाने के लिये एक चिन्हानी माँगी। सीता ने वनवास और अपने विवाह के समय की कुछ बातें बता कर, एक उत्तम चूड़ामणि नामक गहना दिया और कहा :—

सीता—दूत ! इस चिन्हानी को रामचन्द्र पहचानते हैं। इसे देख कर वे मुझे, राजा जनक और राजा दशरथ को याद करेंगे।

हनुमान ने उस गहने को बड़ी श्रद्धा से लिया। चलने के समय उनकी आँखों में आँसू भर आये। सीता का धीरज बँधा और भक्ति के साथ उन्हें प्रणाम कर के, वे वहाँ से प्रस्थित हुए।

हनुमान अशोक वन में घूमने लगे, उन्होंने सोचा कि लङ्का से जाने के पहले रावण के बल की परीक्षा लेनी चाहिये। यह सोच कर, वे पेड़ों को उखाड़ कर फेंकने लगे, वन की रक्षा करने वाले हनुमान की भयानक मूर्त्ति देख, इधर उधर भागने लगे। इसकी सूचना रावण को मिली। उसने पुष्पोद्यान उजाड़ने वाले वानर को पकड़ने या मार डालने

की आज्ञा दी। रावण की आज्ञा पा कर, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर राक्षस वानर को पकड़ने के लिये चले। युद्ध आरम्भ हुआ, हनुमान ने उन राक्षसों को मार डाला। वानर का ऐसा पराक्रम देख, बड़े बड़े सेनापति लड़ने के लिये आये, परन्तु उनको भी हनुमान के हाथ से मरना पड़ा। अनन्तर अक्ष नामक रावण का बेटा लड़ने के लिये आया। उसने अस्त्र शस्त्रों के प्रहार से हनुमान को व्यथित किया। अन्त में हनुमान ने उसको और उसकी सेना को भी मार डाला और वे सिंह की तरह गरजने लगे। अक्षयकुमार का मारा जाना सुन कर, रावण क्रोध से अधीर हो गया। उसने वीर-शिरोमणि मेघनाद को वानर का वध करने के लिये भेजा। हनुमान ने उसके साथ युद्ध किया और अन्त में स्वेच्छा ही से वे पाशबद्ध हो गये। इन्द्रजीत हनुमान को रावण की सभा में ले आया। हनुमान को देख कर, रावण ने उनका परिचय पूँछा। हनुमान ने रावण को निर्भय हो कर अपना परिचय और लङ्का में आने का कारण बताया। साथ ही हनुमान जी ने उससे यह भी कहा कि तुम रामचन्द्र जी के साथ मैत्री कर लो और सीता को उनके समर्पित करो। इस समय इसी में तुम्हारा मङ्गल है। हनुमान की बातों से रावण को बड़ा क्रोध उपजा। परन्तु हनुमान डरने वाले न थे। उन्होंने रावण के पापों की कथा कह कर, वहीं उसका तिरस्कार किया। तब तो रावण बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उसने हनुमान के वध की आज्ञा दी। परन्तु चतुर विभीषण ने अनेक विधि समझाया कि शास्त्रकारों ने दूतों को अवध्य बतलाया है। विभीषण ने यह भी कहा कि इसको अङ्ग भङ्ग कर के लङ्का से निकाल देना चाहिये। रावण की आज्ञा से हनुमान की

पूँछ में कपड़े लपेट कर आग लगा दी गयी। आग लगाते ही हनुमान भवन पर चढ़ गये। अपनी पूँछ की अग्नि उन्होंने भवन में लगा दी। पुनः इस मकान से कूद कर वे दूसरे मकान पर जाते और उसमें भी आग लगा देते थे। इसी प्रकार एक मुहूर्त्त मात्र ही में सोने की लङ्का भस्ममय हो गयी।

लङ्का जला देने के बाद सीता के लिये हनुमान को बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु अशोक वन में उन्होंने सीता को सकुशल पाया। इससे हनुमान प्रसन्न हुए। वहाँ से विदा हो कर, वे समुद्र के इस पार आये। हनुमान को आते देख कर, अङ्गद आदि वीर सेनापतियों की चिन्ता दूर हुई। हनुमान से उन लोगों ने सीता का संवाद पाया। प्रसन्नता के कारण वे उछलने कूदने लगे। उनके सिंहनाद से दिशाएँ गूँजने लगीं, उनकी किलकारी से भूमण्डल व्याप्त हो गया।

सुग्रीव, अङ्गद आदि वानरों का आना सुन कर, बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि अवश्य ही वे सीता का समाचार लाये हैं। हनुमान ने राम और सुग्रीव के सामने सब बातें कहीं, समुद्र-लङ्घन, लङ्का-दहन आदि सब कथायें उन्होंने कह सुनायीं। सीता की दीनता, पतिभक्ति, रावण के साथ सीता का व्यवहार, रावण का उन्हें पीड़ा देना, सीता का दुःख, राम लक्ष्मण की उदासीनता से सीता का विलाप, इत्यादि बातें एक एक कर के कहीं। अनन्तर सीता का दिया हुआ गहना रामचन्द्र जी को समर्पित किया, रामचन्द्र जी ने उसे पहचाना, उसे देखते ही उनका गला भर गया। उन्होंने उसी समय लङ्का पर चढ़ाई करने की तयारी की।

सेना तैयार हो गयी, वानरों की अगणित सेना दक्षिण दिशा की ओर, थोड़े ही दिनों में रामचन्द्र जी की सेना के

साथ समुद्र के किनारे उपस्थित हुईं। वहाँ सब मिल कर समुद्र पार करने का उपाय सोचने लगे, इतनी बड़ी सेना समुद्र पार कैसे करेगी? इसका विचार सुग्रीव आदि के साथ रामचन्द्र करने लगे।

समुद्र के किनारे रामचन्द्र के आने का समाचार रावण को मिला। इस विपत्ति से रक्षा पाने के लिये, रावण अपने मंत्रिमण्डल के साथ बैठ कर विचार करने लगा। दुराचारी राक्षस क्या परामर्श दे सकते हैं। केवल धर्मात्मा विभीषण ने रावण के मङ्गल के लिये उचित उपाय बतलाया। परन्तु वहाँ तो "जाको विधि दारुण दुःख देहीं, ताकी मति आगे हर लेहीं" की दशा थी। रावण उन पर क्रुद्ध हुआ, और उनका तिरस्कार करने लगा। विभीषण ने रामचन्द्र को सीता देकर लङ्का और अपने परिवार की रक्षा करने की सम्मति दी थी। यही उनका अपराध था। विभीषण इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि सीता के कारण ही रावण का नाश होने वाला है। विभीषण दुराचारी रावण का सम्बन्ध त्याग कर और समुद्र पार कर राम की शरण में आये। रामचन्द्र ने विभीषण की बातें सुन कर, उनसे मित्रता की। विभीषण ने भी रामचन्द्र को सहायता देने की प्रतिज्ञा की। अनन्तर समुद्र पार होने की चेष्टा होने लगी। शिल्पी नल और नील नामक वानरों ने वृक्ष और पहाड़ों से शीघ्र ही समुद्र पार करने के लिये सेतु बनाया। उस सेतु की सहायता से रामचन्द्र की सेना लङ्का नगरी के द्वार पर उपस्थित हुई। रामचन्द्र जी ने अपनी सेना को कई भागों में विभक्त किया, और बड़ी दूरन्देशी के साथ, व्यूह रचना (मोरचाबन्दी) करके लङ्का को घेर लिया। वानर-सेना सिंह नाद करने लगी, और राजा रामचन्द्र की जय ध्वनि से आकाश और पृथ्वी को गुँजाने लगी।

ग्यारहवाँ अध्याय।

सीता जी रावण की लङ्का में बन्द हैं। यद्यपि राक्षसियाँ उनको भय दिखलाया करती थीं, तथापि वे एक बार ही असहाया नहीं थीं। सीता के आदर्श चरित्र से राक्षसियों के हृदय में भी भक्ति का सञ्चार हो गया था। त्रिजटा नाम की एक दासी सीता की रक्षा करने के लिये रावण द्वारा नियुक्त की गयी थी। त्रिजटा यद्यपि दिखाने के लिये सीता को त्रास दिया करती थी, तथापि गुप्तभाव से वह सीता के साथ अच्छा बरताव करती थी। एक दिन सीता और अन्य राक्षसियों के सामने ही, उसने अपने भयानक सपने का हाल कहते हुए कहा कि सीता-हरण के अपराध ही से सोने की लङ्का नष्ट हो जायगी और सीता को रामचन्द्र जी ले जाँयगे। अतएव अपने अपने कल्याण चाहने वालियों को सीता का अनुगत हो जाना चाहिये। यह सुन कर सीता ने प्रसन्न हो कर कहा:—

सीता—त्रिजटे! यदि तुम्हारा यह कहना सत्य होगा; तो हम तुम्हारी रक्षा करेंगी।

त्रिजटा के अतिरिक्त सरमा आदि और भी राक्षस-स्त्रियाँ सीता के दुःख से दुःखित थीं। विभीषण, माल्यवान्, अविन्ध्य

आदि धर्मात्मा सीता को रामचन्द्र के पास भेजने का अनुरोध करते थे; परन्तु मुमुर्षु रावण का ध्यान इनकी वातों की ओर नहीं गया। यद्यपि राम की सेना देख रावण भयभीत हो गया था, यद्यपि दुरात्मा मंत्रियों के उत्साह दिलाने से उसने सन्धि करना नहीं चाहा; तथापि युद्ध आरम्भ होनेके पहले रामचन्द्र ने युवराज अङ्गद को रावण के निकट भेजा। अङ्गद ने सीता को देने के लिये और शरणागत होने के लिये रावण को समझाया। परन्तु अङ्गद की वातों का कुछ फल नहीं हुआ। तव रामचन्द्र ने लङ्का पर धावा करने के लिये अपनी सेना को आज्ञा दी।

रावण वीर और युद्धनीति में विशारद था। अतएव वह युद्ध के विना ही रामचन्द्र को पराजित करने के लिये उपाय सोचने लगा। उसने सोचा कि रामचन्द्र के विना मरे अथवा रामचन्द्र के मरने का विश्वास विना जमाये सीता हमारे वश में नहीं हो सकती। यह सोच कर उसने रामचन्द्र का सिर और धनुष वनाने के लिये लङ्का के प्रसिद्ध कारीगरों से कहा। जव वे तैयार हो गये, तव रावण सिर और धनुष ले कर सीता के समीप गया और रामचन्द्र जी के मरने का असत्य समाचार कह कर, कटा सिर और धनुष आगे रख दिया। सीता जी उन्हें देख विलाप करने लगीं और अधीर हो कर रावण की चिरौरी करने लगीं। उन्होंने कहाः—

सीता—रावण! रामचन्द्र की मृतदेह के समीप लेचल कर हमारा वध करो। पतिपत्नी को मिला दो, मैं अपने पति का अनुसरण करूँगी।

सीता इसी प्रकार विलाप कर रही थीं कि इसी समय एक पहरुए ने रावण से कहा, सेनापति और अमात्य दर्शन

के लिये खड़े हैं। यह सुन कर रावण वहाँ से चला गया। उसके जाते ही सरमा ने सीता को समझाया कि यह मृतदेह राम का नहीं है, किन्तु यह माया के द्वारा बनाया गया है। यह सुन सीता आश्वस्ता हुईं।

इधर वानर और राक्षसों में युद्ध होने लगा, दोनों ओर के वीर दृढ़ता पूर्वक लड़ लड़ कर धराशयी होने लगे। एक दिन मेघनाद और रामचन्द्र में भयानक युद्ध हुआ। हज़ारो, सहस्रों वानर और राक्षसों के रुधिर से रणभूमि सिक्त हुई। थोड़ी देर युद्ध होने के पश्चात् मेघनाद राम लक्ष्मण को नाग फाँस से बाँध, लङ्का नगरी में ले आया। इससे रावण आपेसे बाहर होगया, उसने सीता को रणभूमि दिखाने के लिये त्रिजटा को आज्ञा दी। सेना में राम और लक्ष्मण को न देख सीता विलाप करने लगीं, परन्तु त्रिजटा ने उन्हें असली बात समझा दी। पुनः वे अशोक वन में आकर पहले के समान रहने लगीं। रावण की यह माया भी नष्ट हुई।

इस युद्ध में रावण के बड़े बड़े सेनापति धूम्राक्ष, वज्र दंष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त, कुम्भकर्ण, त्रिशिरा, महोदर, अतिकाय, मकराक्ष, कुम्भ और निकुम्भ, आदि एक एक कर के मारे गये। धीरे धीरे लङ्का वीरों से शून्य होगयी, रावण और इन्द्रजित् केवल ये ही दो रह गये। किसी दिन जीत कर और किसी दिन हार कर, ये सन्ध्या होते ही लङ्का में लौट जाते थे। एक दिन वानरों की जीत हुई। उसी बीच में उन लोगों ने लङ्का में आग लगा दी। लङ्का की रही सही शोभा भी जाती रही। अब रावण को अपना नाश होने में कुछ भी सन्देह न रहा; किन्तु युद्ध करना नहीं छोड़ा। एक दिन मेघनाद ने माया की सीता बना कर युद्ध भूमि में उसका शिरच्छेद किया, हनुमान

को यह देख बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने राम लक्ष्मण को यह सम्बाद सुनाया। सुनते ही राम और लक्ष्मण भी घबड़ा गये। वे बिलाप करने लगे। परन्तु विभीषण ने इसकी भीतरी बातों का पता लगा कर रामचन्द्र जी को उसका रहस्य समझा कर धीरज बँधाया।

मेघनाद को दुर्द्धर्ष और दुर्जेय देख कर, एक दिन महावीर लक्ष्मण विभीषण और हनुमान के साथ तथा अन्य अगणित सेना को साथ ले कर, उसके पूजास्थान निकुम्भिला देवी के मन्दिर में गये और उसकी यज्ञ-सामग्री को इन लोगों ने तितर बितर कर दिया। तब मेघनाद ने अपनी मृत्यु को सामने देखा। उसने बड़ी वीरता से लड़ कर वीरोचित गति प्राप्त की। मेघनाद की मृत्यु ने रावण के अविचल हृदय को हिला दिया। वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। सचेत होने पर उसे मालूम हुआ कि हमारे वंश के नाश का कारण सीता ही है। वह तलवार लेकर सीता को मारने के लिये अशोक वन की ओर दौड़ा। रावण की दशा देख राक्षसियाँ इधर उधर भागने लगीं। रावण को देख, सीता को यह जानते देर न लगी कि यह हमे मारने के लिये ही आ रहा है। वे मरने के लिये तैयार हो कर बैठ गयीं। रावण सीता को मारना ही चाहता था कि उसकी स्त्रियों ने आ कर उसे रोका। स्त्रियों का कहना उसने मान लिया। रावण उसी क्रोध में भरा युद्ध-भूमि में उतर पड़ा। दोनों दलों में भयङ्कर युद्ध होने लगा। रावण ने रामचन्द्र जी पर शक्ति छोड़ी, लक्ष्मण ने उसे अपनी छाती पर रोका। शक्ति के लगते ही लक्ष्मण अचेत हो कर, गिर गये। यह देख रामचन्द्र की सेना में शोक

छा गया। सभी विलाप करने लगे। रावण भी युद्ध में विजयी हो कर प्रसन्नता पूर्वक लङ्का लौट गया।

शक्ति लगने से लक्ष्मण अचेत हो कर पड़े थे। हनुमान वैद्य बुला लाये और गन्ध-मादन पर्वत से सजीवन बूटी लाये। उस बूटी से लक्ष्मण अच्छे हो गये। वानरों के आनन्द की अवधि न रही। पुनः रामचन्द्र के दल में उत्साह और विजय-लालसा सञ्चारित हुई। यह सुन रावण चिन्तित हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि, आज रावण या राम इन दोनों में एक का नाश हो जाना आवश्यक है। प्रभात होते ही बड़े उत्साह से वह रण-भूमि में उतर पड़ा। भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। रावण और राम की युद्ध-निपुणता देखने के लिये देवता, सिद्ध, चारण आदि उपस्थित हुए। देवराज इन्द्र ने पैदल राम को युद्ध करते देख, अपना रथ उनके लिये भेज दिया। रथ पर चढ़ कर, रामचन्द्र ने रणभूमि में रथ ले चलने के लिये सारथी को आज्ञा दी। दोनों युद्ध करने लगे। दर्शक उत्सुकता पूर्वक यही देख रहे थे कि विजय-लक्ष्मी किस को मिलती है। राम-रावण का युद्ध देखने के लिये महर्षि अगस्त्य लङ्का में आये थे। उन्होंने रामचन्द्र को विजय प्राप्त करने के लिये "आदित्य हृदय स्तोत्र" के पाठ करने की विधि बतलायी। रावण का वध करने के लिये रामचन्द्र बड़े उत्साह से युद्ध करने लगे। बहुत देर तक युद्ध होता रहा, परन्तु किसी के जय पराजय का लक्षण नहीं दीखता था। अन्त में रामचन्द्र ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जिसके प्रहार से रावण की मृत्यु हुई।

रावण के मरते ही सब लोग आनन्द मनाने लगे। देवता रामचन्द्र की जयध्वनि करने लगे। रामचन्द्र पर आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी। वानर दल किलकारियाँ मारने लगा।

विभीषण रावण को धराशायी देख विलाप करने लगा। पतिशोक से व्याकुल रावण की स्त्रियाँ तड़फती हुईं, युद्धभूमि में उपस्थित हुईं। रामचन्द्र ने विभीषण को समझा कर, रावण का अन्तिम कृत्य करने के लिये अनुरोध किया। रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हुई। रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण ने विभीषण का लङ्का के राज्य-सिंहासन पर अभिषेक किया।

सुग्रीव की प्रतिज्ञा पूरी हुई। रामचन्द्र का शत्रु मारा गया। सुग्रीव आदि प्रधान प्रधान पुरुष आनन्द मनाने के लिये एकत्रित हुए। रामचन्द्र ने सीता का समाचार पूँछने और रावण-वध का समाचार सुनाने के लिये हनुमान को भेजा। रामचन्द्र ने कहा:—

श्रीरामचन्द्र—वीर! तुम सीता को यह संवाद दे कर शीघ्र ही उसका उत्तर लाओ।

हनुमान ने सीता से सभी बातें कहीं। इस आनन्द समाचार को सुनते ही सीता का कण्ठ भर आया। वे बोल न सकीं। थोड़ी देर के बाद उन्होंने कहा:—

सीता—वत्स! आज तुमने मुझे आनन्द समाचार सुनाया है उसके अनुरूप पारितोषिक देने योग्य वस्तु, मेरे पास कुछ भी नहीं है; जिसे तुमको दे कर सुखी होऊँ। सुवर्ण, रत्न अथवा इस त्रिलोकी का राज्य भी इसके सामने तुच्छ है।

सीता की बातों से हनुमान बहुत प्रसन्न हुए। सीता को दुःख देने वाली राक्षसियों का वध करने के लिये हनुमान ने अनुमति माँगी। तब सीता ने कहा:—

सीता—वीर! जो राजा के आश्रित अथवा अधीन हैं, जो दूसरों की आज्ञा-पालन करती हैं, उन दासियों पर कौन क्रोध करेगा? अदृष्ट दोष या पूर्व-जन्म के पापों से हमारी यह दुर्दशा हो रही है। अतएव उनका वध करने के विषय में मुझसे न पूँछो। हम इन सब के अपराधों को क्षमा करती हैं। ये रावण की आज्ञा से हमको दुःख देती थीं। रावण मारा गया, अब ये हमको दुःख भी नहीं देंगी। जो दूसरों की प्रेरणा से पापाचरण करता है, बुद्धिमान् उसको अपराधी नहीं समझते हैं। सब स्थानों पर क्षमा करना ही उचित है। दुरात्मा या पापियों को भी बहुत सोच कर दण्ड देना चाहिये।

सीता की बातों को सुन कर, हनुमान बोले :—

हनुमान—आप रामचन्द्र की गुणवती धर्म-पत्नी होने के सर्वथा योग्य हो। अब आप मुझे आज्ञा दें मैं जा कर आपका समाचार सुनाऊँ।

जानकी—मैं भक्तवत्सल पति से मिलना चाहती हूँ।

हनुमान—आप आज ही रामचन्द्र जी से मिलेंगी और देखेंगी अब उनका कोई शत्रु नहीं है। जिस प्रकार शची इन्द्र को देखती हैं, उसी प्रकार आप भी रामचन्द्र को देखेंगी।

यह कह कर हनुमान रामचन्द्र जी के समीप आये और वहाँ का हाल कह सुनाया।

हनुमान से सीता का संवाद सुनते ही रामचन्द्र के मुँह का रङ्ग बदल गया। उनकी आँखों में पानी भर आया, उन्होंने उसाँसें लेते हुए विभीषण से कहा :—

श्रीरामचन्द्र—राक्षसाधिप ! सीता को स्नान वस्त्र आदि से सुसज्जित कर ले आओ।

तदनन्तर विभीषण ने सीता के समीप उपस्थित होकर बड़ी नम्रता के साथ कहा :—

विभीषण—देवि ! आप स्नान आदि कर के पालकी में विराजिये, आपका कल्याण हो। रामचन्द्र जी आपको देखना चाहते हैं।

विभीषण के वचन सीता के लिये अमृत के समान थे, आज बहुत दिनों पर सीता अपने स्वामी का दर्शन करेंगी। इसीसे सीता के लिये वस्त्र अलङ्कार की आवश्यकता थी। वे कृतज्ञता पूर्वक देवताओं को प्रणाम करती थीं और कभी आनन्दाश्रु विसर्जन करती थीं। इस प्रकार वह पालकी रामचन्द्र के समीप पहुँची। विभीषण ने सीता के आने की सूचना दी। परन्तु रामचन्द्र मानों ध्यान-मग्न हैं। उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। उन्हें ध्यान-मग्न देख विभिषण ने पुनः कहा। "देवी जानकी उपस्थित हैं।"

राक्षस के घर में रह कर आयी हुई सीता को देख, राम के हृदय में हर्ष क्रोध और दुःख साथ ही साथ उत्पन्न हुए। थोड़ी देर तक सोच कर, उन्होंने कहा :—

श्रीरामचन्द्र—राक्षसनाथ ! शीघ्र ही जानकी को हमारे पास लाओ।

यह कह कर राम पुनः ध्यान-मग्न हुए। विभीषण ने अपने अनुचरों को आज्ञा प्रदान की कि यहाँ से सब लोगों को हटा दो। वानर भालु राक्षस वहाँ से हटाये जाने लगे, इधर उधर जाने के शब्द से वहाँ कोलाहल मचा। रामचन्द्र का ध्यान भी भङ्ग हो गया। तब उन्होंने विभीषण को डपट कर कहा :–

श्रीरामचन्द्र–इनको यहाँ से हटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। गृह, वस्त्र या मकान आदि में स्त्रियाँ नहीं छिपायी जाती हैं। चरित्र ही स्त्रियों का आवरण है और विपत्ति, स्वयम्वर यज्ञ, विवाह आदि के समय स्त्रियों का सब के सामने होना हानिकारी नहीं है। इस समय सीता विपत्ति में फँसी हुई हैं और हमारे समीप इन लोगों के सामने भी सीता का आना कुछ अनुचित नहीं है। रथ छोड़ कर पैदल ही वह आवे। ये वानर आदि सभी हमारे सामने उनको देखें।

रामचन्द्र जी की आज्ञा से विभीषण को बड़ा सन्देह हुआ। लक्ष्मण और हनुमान भी राम की आज्ञा से विचलित हुए। सीता रामचन्द्र के समीप आयीं। वे राम का मुख देख कर आनन्दित हुईं। बहुत दिनों से बिछुड़े प्राणनाथ को देख, जो आनन्द सीता को होता था, वह वे ही बतला सकती हैं। वानर और राक्षसों के बीच सीता खड़ी थीं। लज्जा से वे सङ्कुचित होती जाती थीं। अपने पास विनय-नम्र-जानकी को खड़ी देख, रामचन्द्र ने कहा :—

श्रीरामचन्द्र–भद्रे! युद्ध में शत्रु को मार कर, मैंने तुम्हारा उद्धार किया। जहाँ तक मनुष्य कर सकता है, वह मैंने कर दिया है। इस समय मेरे हृदय को शान्ति मिली। मैंने अपने अपमान का बदला चुका लिया। हमारे न रहने पर दुष्ट राक्षस ने जो तुमको हर लिया था, ये तुम्हारे भाग्य का दोष था। मैंने उसे दूर किया। हनुमान के समुद्रलङ्घन, लङ्का-दहन आदि महान कार्य, सुग्रीव का परिश्रम तथा विभीषण की चेष्टा आज सफल हुई।

सीता के नयन युगल से झर झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। सीता की यह दशा देख रामचन्द्र व्याकुल हो गये, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने को सम्भाला और वे कहने लगेः—

रामचन्द्र—शत्रु के तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये, मानी मनुष्यों को जो करना चाहिये, उसे मैंने रावण को मार कर कर दिया है। यह तुम निश्चय समझो कि मैंने अपने मित्रों के बाहुबल ही से इस युद्ध-सागर को पार किया है, परन्तु यह युद्ध तुम्हारे लिये नहीं किया गया है, किन्तु अपने चरित्र की रक्षा के लिये और सर्वव्यापी निन्दा तथा प्रसिद्ध रघुवंश का कलङ्क मिटाने के लिये ही यह सारा परिश्रम उठाया गया है। तुम राक्षस के घर रह चुकी हो, अत-

एव तुम्हारे चरित्र पर हमको सन्देह है। राक्षस तुमको बुरी दृष्टि से देखता था, इस लिये मैं तुमसे साफ साफ कहता हूँ कि जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ तुम जाओ। कोई भी कुलीन मनुष्य दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को पुनः अपने यहाँ नहीं रख सकता है। जिस उद्देश्य से हम तुम्हारा उद्धार करना चाहते थे, वह सफल हो गया। अब हम तुमको रख नहीं सकते। अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जा सकती हो।

यदि उस समय सीता पर वज्रपात होता, तो उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं होता; परन्तु रामचन्द्र जी की इन कठोर बातों को सुनने से उनके सभी मनोरथ नष्ट हो गये। वे फूट फूट कर रोने लगीं। इसके उपरान्त बड़ी कठिनता से अपने को सम्भाल कर सीता ने कहा:—

सीता—जिस प्रकार नीच लोग अपनी स्त्रियों से कहा करते हैं, आपने भी उसी प्रकार मुझे कठोर वचन कहे हैं। आप जैसी मुझे समझ रहे हैं, मैं वैसी नहीं हूँ। मैं अपने चरित्र की शुद्धता के लिये शपथ करती हूँ। आप विश्वास कीजिये। आप कुछ नीच स्त्रीयों के चरित्र देख, स्त्रीजाति मात्र को नीच और कलङ्कित समझते हैं। यह आपके लिये अनुचित ही नहीं, किन्तु निन्द्य भी है। आप मेरी परीक्षा लीजिये, विश्वास

कीजिये, विवशता की दशा में जो मेरा अङ्गस्पर्श दोष हुआ है, उसके लिये मैं अपराधिनी नहीं हो सकती। क्योंकि उस समय मैं विवश थी, परन्तु उस समय भी मेरा हृदय आप ही के चरणों में था। मैं आप ही की चिन्ता किया करती थी। यदि आपको यही करना था, तो हनुमान ही से मेरे परित्याग की बातें आपने क्यों न कहला दीं। ऐसा करने से न तो आप को कष्ट उठाना पड़ता, और न आपके मित्रों ही को यह व्यर्थ का कष्ट सहना पड़ता। मैं उसी समय सुख पूर्वक प्राण छोड़ देती। महाराज, आप क्रोध के वश हो कर, यह अत्याचार कर रहे हैं। आप मुझको साधारण स्त्रियों के समान समझ रहे हैं। परन्तु स्मरण रखिये मेरा नाम जानकी है। केवल जनक की पुत्री होने ही से मेरा जानकी नाम नहीं है, किन्तु पृथ्वी मेरी माता है। विचारशील होने पर भी आपने मेरे चरित्र को ठीक नहीं समझा। जिस उद्देश्य से बाल्यावस्था ही में हमारा विवाह किया गया था, आपने उसका भी विचार नहीं किया। मेरी भक्ति और मेरे प्रेम को आप बिलकुल ही भूल गये।

यह कह कर रोती हुई जानकी ने लक्ष्मण की ओर देख कर कहा।

सीता—लक्ष्मण तुम हमारे लिये शीघ्र ही चिता बना दो, चिता में जलने ही से हमारे इस ताप की शान्ति होगी। मैं झूठा कलङ्क नहीं सह सकती, महाराज हमारे गुणों से प्रसन्न नहीं हैं, उन्होंने सब के सामने ही मेरा परित्याग किया है। इस समय मैं चिता में प्रवेश कर के, अपने कलङ्क को जला दूँगी।

लक्ष्मण ने डब डबायी आँखों से क्रोध पूर्वक रामचन्द्र की ओर देखा। रामचन्द्र ने चिता बनाने के लिये सङ्केत से आज्ञा दी। चिता बनायी गयी, उसमें आग भी लगा दी गयी। सीता जी चिता प्रवेश कर ने के लिये उद्यत हैं। कुपित यमराज के तुल्य राम को वहाँ उपस्थित मनुष्यों में से कोई भी साहस पूर्वक कुछ कह नहीं सकता था। सीता रामचन्द्र की प्रदक्षिणा कर के चिता के समीप आकर खड़ी हुईं। उन्होंने देवता और ब्राह्मणों को प्रणाम कर के अग्नि से कहा:—

चौपाई।

"जौ मन वच क्रम मम उर माहीं।
तजि रघुवीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कहं होहु श्रिखण्ड समाना॥

यह कह कर जानकी ने चिता की प्रदक्षिणा की और उसमें प्रविष्ट हुईं। यह देख कर बालक वृद्ध वनिता आदि सभी कोलाहल करने लगे। देवाङ्गनाएँ रोने लगीं। रोदन ध्वनि चारो ओर दूर दूर तक फैलने लगी। हाहाकार मच गया, जानकी का कठोर और अलौकिक यह कार्य देख कर,

रामचन्द्र क्षुभित सागर के समान हो गये। उसी समय उन्होंने आकाश वाणी सुनी :—

आकाशवाणी—राम! तुम संसार के स्वामी हो, ज्ञानी भी तुमसे शिक्षा चाहते हैं। इस समय अग्नि परीक्षित सुवर्ण के समान शुद्धा जानकी की उपेक्षा मत करो। निष्पापा सीता का ग्रहण करो। आप साक्षात् विष्णु हो, रावण के वध के लिये आपने अवतार लिया है। वह कार्य सम्पूर्ण हो गया।

आकाशवाणी के समाप्त होते न होते चिता में से एक देदीप्यमान पुरुष अविर्भूत हुए, उन्होंने सीता को रामचन्द्र के हाथों में समर्पित कर के कहा :—

पुरुष—राम! यह तुम्हारी जानकी है। यह पाप रहित है। इसके चरित्र में किसी प्रकार का कलङ्क नहीं है। यद्यपि इसका शरीर लङ्का में विद्यमान था, तथापि, चित्त सर्वदा आपके पास ही रहता था। राक्षस और राक्षसियों ने सर्वदा इसको दुःख पहुँचाया, इसको लोभ दिखलाया, परन्तु इसकी भक्ति आपमें स्थिर थी। इसने रावण की ओर दृष्टि उठा कर भी नहीं देखा है। इसका हृदय शुद्ध है, यह पाप रहित है। अब तुम इसको ग्रहण करो, मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इसके विषय में किसी प्रकार का सन्देह मत करो।

रामचन्द्र सीता को शुद्ध जानते थे। सीता के चरित्र के विषय में रामचन्द्र को कुछ भी सन्देह नहीं था। परन्तु बहुत दिनों तक सीता रावण के घर में रही थीं, अतएव उनके चरित्र की परीक्षा सब के सामने करना उन्होंने आवश्यक समझा। यदि रामचन्द्र जी ऐसा नहीं करते, तो उनकी निन्दा होती। आज सब के सामने सीता की शुद्धता जाँची गयी, सभी ने सीता का अलौकिक पातिव्रत्य देखा। सभी ने समझ लिया कि भगवती सीता अग्नि-शिखा के समान अस्पृश्य हैं। तब रामचन्द्र जी ने सादर सीता को ग्रहण किया। आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। रोहिणी और चन्द्रमा, प्रभा और सूर्य, शची और इन्द्र के समान सीता और राम सुशोभित हुए।

बारहवाँ अध्याय ।

रामचन्द्र ने पतिव्रता सीता को ग्रहण किया। इससे सभी आनन्द में मग्न हो गये। बहुत विघ्न बाधाओं के सहने के बाद जानकी अपने पति के चरणों में आ कर सुखी हुईं और रामचन्द्र का कठोर व्यवहार भूल गयीं। रामचन्द्र और पतिव्रता सीता ने आनन्दाश्रु के जल से दुःखाग्नि को बुझा दिया। उनके दुःख के दिन बीत गये, पुनः उसी अलौकिक प्रेम का प्रवाह उनमें बड़े वेग के साथ बहने लगा। पुनः पुरानी अवस्था उनकी हो गयी। मानो सीता-हरण आदि दुःखद घटना हुईं ही नहीं थीं।

रामचन्द्र के चौदह वर्ष के वनवास की अवधि समाप्त हो गयी। लक्ष्मण जानकी और सुग्रीव विभीषण आदि अपने मित्रों के साथ रामचन्द्र अयोध्या जाने के लिये उत्कण्ठित थे। लङ्काधिपति विभीषण ने देवदुर्लभ पुष्पक विमान वहाँ मँगाया। राम लक्ष्मण और सीता तथा उनके और सहचर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए। पुष्पक विमान आकाश मार्ग से चला। रामचन्द्र जी और सीता विमान के दूसरे खण्ड में बैठे थे। आकाश से पृथिवी की शोभा विचित्र मालूम होती थी। रामचन्द्र जी प्रिया जानकी को प्रत्येक पदार्थों का वर्णन

कर के दिखलाते जाते थे। युद्धभूमि, युद्धभूमि में जहाँ जहाँ कोई विशेष घटना हुई थी उनका वर्णन रामचन्द्र जी करते जाते थे। विमान समुद्र पर पहुँचा, रामचन्द्र जी ने सेतुबन्धन की सभी बातें कहीं। क्रमशः विमान किष्किन्धा नगरी में उपस्थित हुआ। तारा और रूमा आदि वानरी स्त्रियाँ स्वागत करने के लिये प्रस्तुत थीं। सीता के साथ उनका परिचय हुआ, सीता की आज्ञा से वे भी उसी विमान पर अयोध्या चलने के लिये आरुढ हुईं। पुष्पक विमान अयोध्या की ओर चला। रामचन्द्र जी ने भी सीता को ऋष्यमूक पर्वत, पम्पा-सर आदि के मनोहर प्रदेश बताये। सीता के विरह में किस स्थान पर रामचन्द्र जी ने क्या किया था, आदि बातें उन्होंने कहीं। शबरी का आश्रम, कबन्ध के बध का स्थान, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग, महर्षि अत्रि आदि के आश्रमों का वर्णन कर रामचन्द्र जी आनन्दित होते थे। दूर ही से अक्षयवट यमुना और गङ्गा को देख सीता ने भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। भरद्वाज के आश्रम पर विमान उपस्थित हुआ। रामचन्द्र और लक्ष्मण ने विमान से उतर कर भरद्वाज को प्रणाम किया, महर्षि से अयोध्या का कुशल संवाद जान कर वे प्रसन्न हुए। महावीर हनुमान नन्दिग्राम में भरत को रामचन्द्र के आने की ख़बर देने के लिये पहले ही भेज दिये गये। रामचन्द्र के आने का संवाद सुन कर, भरत ने सब जगह आनन्द मनाने के लिये आज्ञा प्रचारित की और वह स्वयं रामचन्द्र जी की अगवानी के लिये अपने मंत्रियों के साथ आगे बढ़े।

रामचन्द्र के आने का संवाद चारों तरफ फैल गया। जो जिस काम में था वह वहीं से उस काम को छोड़, रामचन्द्र का दर्शन करने के लिये दौड़ा। रामचन्द्र अपनी प्रजा को आते

देख बहुत ही प्रसन्न होते थे। भरत को पैदल आते देख, रामचन्द्र जी ने पुष्पक विमान ठहराया। कुशल प्रश्न कर के पाद्य अर्घ्य आदि के द्वारा भरत ने रामचन्द्र की पूजा की। पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पैर पर पड़े, लक्ष्मण को उठाया तथा उनसे कुशल प्रश्न पूँछा। अनन्तर सीता को प्रणाम कर के, उन्होंने हनुमान सुग्रीव विभीषण आदि को गले लगाया। तदनन्तर रामचन्द्र ने शोक-दुर्बला-कौशल्या सुमित्रा और कैकेयी आदि माताओं को प्रणाम किया। नगर के गण्य मान्य मनुष्य रामचन्द्र से कुशल प्रश्न करने लगे। इसी समय भरत ने सुवर्ण-पादुका रामचन्द्र जी को पहनाये और उन्होंने हाथ जोड़ कर विनय की :—

भरत—पूज्य! जिस राज्य की रक्षा का भार आपने मुझको सौंपा था, उसे मैं आपको पुनः अर्पण करता हूँ। आज मैं महाराज को अयोध्या में आये हुए देख कर, बड़ा ही आनन्दित होता हूँ। आप अपना धन, कोषागार गृह, आदि सभी देख लें। आप ही के प्रताप से मैंने आपके राज्य को दस-गुना बढ़ाया है।

अयोध्या में आ कर रामचन्द्र राजसिंहासन पर विराजमान हुए और सुग्रीव विभीषण आदि मित्रों को उन्होंने भेंट दी। रामचन्द्र ने जानकी को एक जड़ाऊ बहुमूल्य मुक्ताहार उपहार में दिया। सीता ने रामचन्द्र जी की आज्ञा से वह हार अपने उपकारी हनुमान को पुरस्कार दिया। हनुमान सीता के उपहार से अत्यन्त प्रसन्न हुए। महर्षि वसिष्ठ, विजय, जावालि, कश्यप, कात्यायन, गौतम, और वामदेव आदि ने

रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया। उस समय अयोध्या की शोभा अवर्णनीय थी। कुछ दिनों के बाद राक्षसराज विभीषण और सुग्रीव आदि अपने अपने मंत्रियों के साथ बिदा हो गये। राजा होने पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को युवराज बनाना चाहा, परन्तु लक्ष्मण ने स्वीकार नहीं किया। तब भरत युव-राज बनाये गये।

धर्मसंस्थापक श्रीरामचन्द्र जी पुत्र के समान प्रजापालन करने लगे। उनके शासनकाल में प्रजा सुख से अपना काम करती थी। उन्होंने अनेक यज्ञ किये, तथा सर्वसाधारण के हित के कामों में भी वे सहायता करते थे। राजसिंहासन पर उनके बैठने के पश्चात् देश देशान्तरों से महर्षि लोग उनकी सभा में उपस्थित होते थे। रामचन्द्र भी उनकी यथाविधि पूजा कर के प्रसन्न होते थे। रावण आदि के जन्म का वृत्तान्त सुन कर रामचन्द्र को बड़ा आश्चर्य होता था। इसी प्रकार बहुत सा समय बीत गया, महर्षि भी अपने अपने स्थान को पधार गये।

राजर्षि जनक, काशी के युधाजित् आदि राजा जो राम-चन्द्र के अभिषेक में आये थे, वे भी अपने अपने राज्यों में चले गये। अब रामचन्द्र जी का प्रजा-पालन ही व्रत हुआ। राज कार्य देख कर रामचन्द्र जी और सीता अशोक-कानन में चले जाते थे और वहीं रहते थे। अशोक-कानन अयोध्या की एक वाटिका का नाम था।

आज सीता महारानी हैं। कुछ ही दिन पहले धन ऐश्वर्य आदि की उपेक्षा कर के वे अपने पति के साथ प्रसन्नता पूर्वक वनचारिणी तपस्विनी थीं। पति के साथ रहने के कारण वन के कठोर कष्टों को भी उन्होंने धीरता और दृढ़ता पूर्वक

सहा। कभी भी वनवास के कष्टों से सीता को दुःखित होते किसी ने नहीं देखा था। वे वन में भी राजप्रासाद के समान ही सुखी रहती थीं। इतने दिनों पर अब सीता को महारानी की पदवी मिली है। सीता की कोई सहेली नहीं है। स्वप्न में भी रामचन्द्र दूसरी स्त्री की ओर नहीं देखते। वे सीता को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। आज रामचन्द्र की आज्ञा उठाने वाले अनेक राजा हैं। रामचन्द्र के गौरव की आज सीमा नहीं है, उनके गौरव एवं उनकी मान मर्यादा से सीता का भी असाधारण गौरव है। परन्तु सीता को इसका कुछ भी अहङ्कार नहीं है। उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। क्या दुःख; क्या सुख सीता की प्रकृति में किसी प्रकार का कभी परिवर्तन नहीं हुआ। सीता देव पूजन आदि से छुट्टी पा कर, अपनी सासों की सेवा करती थीं। वे सब की मङ्गल चिन्ता किया करती थीं। एक सामान्य दासी की भी वे उपेक्षा नहीं करती थीं। रामचन्द्र जी और भरत अपना कर्त्तव्य सर्वदा पालन करें, सीता इसका उपाय सदा किया करती थीं। रामचन्द्र जी पूर्वान्ह में राज्य-कार्य कर के, मध्यान्ह के वाद अपने भवन में रहते थे। उस समय सीता जी रामचन्द्र जी की सेवा करती थीं। दासियों के रहते हुए भी वे सभी काम स्वयं करती थीं।

एक दिन रामचन्द्र जी सीता जी के मुख की पाण्डुता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए। सीता जी गर्भवती हैं, यह देख रामचन्द्र जी ने प्रसन्नता पूर्वक सीता से पूँछा:—

श्रीरामचन्द्र—प्रिये! तुम्हारे अङ्गों में गर्भवती होने के लक्षण दीख पड़ते हैं। तुम अपनी इच्छा बत-

लाओ, तुम क्या चाहती हो? तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं क्या करूँ?

सीता लजा कर हँसती हुई बोली:—

सीता—नाथ! इस समय उन पवित्र आश्रमों को देखने की मेरी प्रबल इच्छा हो रही है। जो फल-मूलाशी तेजस्वी महर्षि गङ्गा के तट पर तपस्या करते हैं, मैं पुनः एक बार उनके दर्शन करना चाहती हूँ। कम से कम एक दिन के लिये मैं उन पुण्याश्रमों में वास करना चाहती हूँ।

सीता जिन पवित्र आश्रमों को देखने के लिये उत्सुक हो रही हैं, उन्हीं आश्रमों में सीता ने चौदह वर्ष बिताये हैं; परन्तु तौ भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। वे फिर वहाँ ही जाना चाहती हैं। देखें अब की उनके भाग्य में क्या बदा है। परमात्मा कुशल करे।

तेरहवाँ अध्याय।

गर्भवती सीता ने अपने पति के निकट आश्रम-वास के लिये प्रार्थना की है, रामचन्द्र भी उसे पूर्ण करने के लिये प्रतिज्ञा कर चुके हैं। रामचन्द्र जी सीता के यहाँ से विदा हो कर दूसरे स्थान पर गये, वहाँ वे अपने मित्रों से बातचीत करने लगे। भद्र नामक किसी मनुष्य ने बात ही बात में कहा कि आपके शासन की बड़ी प्रशंसा हो रही है, प्रजा बहुत ही प्रसन्न है, सर्वदा ही वह आपकी मङ्गल-कामना करती है। परन्तु सीता के विषय में प्रजा को सन्देह है। उनकी विवेचना से दूसरे के घर में रही हुई सीता का आपके द्वारा ग्रहण किया जाना अनुचित हुआ है।

यह सुन कर रामचन्द्र जी वज्राहत के समान निश्चेष्ट हो गये। सीता के सम्बन्ध में प्रजा की ऐसी धारणा सुन कर, रामचन्द्र बहुत ही दुःखित हुए। उन्होंने अपने मित्रों को विदा कर के भरत और लक्ष्मण को अपने समीप बुलाया। रामचन्द्र अपने मन्दभाग्य पर आँसू बहाने लगे। जानकी का शुद्ध-चरित्र राम को मालूम था; परन्तु मूर्ख प्रजा के कुछ लोग सीता के महान चरित्र को न समझ कर, उन पर कलङ्क

लगाते हैं। यह कलङ्क किस प्रकार मिटेगा? रामचन्द्र इसी की चिन्ता करने लगे। सीता के निर्वासन के अतिरिक्त और किसी प्रकार यह कलङ्क दूर नहीं किया जा सकता है; परन्तु सच्चरित्रा, शुद्धा, निरपराधिनी, पतिव्रता और गर्भवती सीता का परित्याग करना भी तो न्याय सङ्गत नहीं है। ऐसी ही अनेक प्रकार की चिन्ता करते करते रामचन्द्र सीता के शोक से कातर हो गये।

भरत और लक्ष्मण दूर ही से रामचन्द्र की यह दशा देख देख चकित हो गये। वे समीप आये, उन्हें देख रामचन्द्र का दुःख और भी बढ़ गया। बड़ी कठिनता से अपने को सम्भाल कर, रामचन्द्र कहने लगे:—

श्रीरामचन्द्र—भाई लक्ष्मण! तुमको मालूम है कि सीता को रावण हर ले गया था, इसी कारण हमने उसका वध किया। उसी समय सीता को ग्रहण करने के विषय में हमें सन्देह हुआ था; परन्तु देवता और साक्षात् अग्नि ने भी सीता की शुद्धता का विश्वास दिलाया। अतएव मैंने सीता को ग्रहण किया। परन्तु आज वही सन्देह कुछ लोगों के मन में पुनः उत्पन्न हुआ है। इससे मेरा हृदय फटा जा रहा है।

रामचन्द्र जी की आखें आँसुओं से भर आयी थीं। इस कलङ्क से रामचन्द्र जी को जो दुःख होता था, उसका अनुभव उन्हींके समान आदर्श पुरुष ही को हो सकता है। रामचन्द्र जी ने फिर कहा:—

श्रीरामचन्द्र—सीता तो सीता, कलङ्क के भय से हम अपने प्राण, लक्ष्मण और भरत तक को भी छोड़ने के लिये तैयार हैं। इस समय हम कलङ्क-रूपी समुद्र में डूब रहे हैं। इससे बढ़ कर दुःख हमको अपने जीवन-काल में और कभी नहीं हुआ था। इस कारण भाई! तुम कल सवेरे सुमंत्र के रथ पर जानकी को लेजा कर, दूसरे देश में छोड़ आओ। गङ्गा के उस पार महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है वहीं सीता को छोड़ कर तुम लौट आना। तुम लोग हमसे जानकी के बारे में अब कुछ न कहो, इस समय उचित अनुचित विचारने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम लोग हमारी आज्ञा मानते हो, तो यही करो। सीता ने पहले आश्रम-वास करने के लिये प्रार्थना की थी। अब उसका भी मनोरथ पूर्ण हो। कल प्रातःकाल ही तुम यहाँ से चले जाना।

रामचन्द्र जी यह कह कर दूसरे घर में चले आये। लक्ष्मण और भरत की जो दशा हुई उसको कौन बतलावे.।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही बड़े ही कष्ट से लक्ष्मण ने रथ तैयार करने के लिये सुमंत्र को आज्ञा दी। सीता निश्चिन्त अपने घर में बैठी हैं। लक्ष्मण गये और उन्होंने अति विनय के साथ प्रणाम किया और बोले।

लक्ष्मण—देवि! रामचन्द्र जी ने आपकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। आपको गङ्गा तीर

के आश्रम में ले जाने की मुझे आज्ञा मिली है। आप तैयार हों, रथ उपस्थित है।

पति के अनुग्रह से सीता जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। विचारी सीता को भीतरी बातें मालूम नहीं थी। उन्होंने वस्त्र अलङ्कार आदि ले कर प्रसन्नता पूर्वक लक्ष्मण से कहा :-

सीता—वत्स लक्ष्मण! ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण मुनि-पत्नियों को देने के लिये मैं ले जाती हूँ।

यद्यपि लक्ष्मण ने सीता की बातों का अनुमोदन किया; तथापि भावी सोच कर उनका हृदय काँपने लगा। भोली भाली सीता की क्या दुर्दशा होने वाली है। यह जान कर लक्ष्मण के दुःख की सीमा न रही। बड़ी कठिनता से लक्ष्मण ने अपने को सम्भाल कर रथ पर चढ़ने के लिये सीता जी से प्रार्थना की। सीता जी रथ पर विराजमान हुईं, रथ नगर के बाहर हुआ। उसी समय भावी दुःख की सूचना देने वाला सीता का दक्षिण नेत्र फड़कने लगा। प्राकृतिक शोभा उनके सामने फिक्क हो गई। उन्होंने अधीरता से लक्ष्मण से कहा :—

सीता—वत्स! मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। यह संसार मुझको शून्य मालूम हो रहा है। रामचन्द्र जी का कुशल तो है? हमारी सास तो कल्याण से हैं? प्रजाओं पर कुछ विपत्ति तो नहीं आयी है।

जानकी की घवड़ाहट देख कर लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया। जानकी भी हाथ जोड़ कर देवताओं से सभी के मङ्गल के लिये प्रार्थना करने लगीं।

लक्ष्मण सीता के साथ गोमती तीर के आश्रम में रात बिता कर, दूसरे दिन मध्यान्ह के समय गङ्गा तीर पर पहुँच गये। दूर ही से गङ्गा जी को देख कर लक्ष्मण व्याकुल होने लगे, उनका छिपा हुआ शोक प्रकाशित होने लगा। वे फूट फूट कर रोने लगे। यह देख सीता घवड़ा गयीं, सीता का सरल चित्त, देवर की दशा देख पिघल गया। भगवती सीता ने रोने का कारण लक्ष्मण से पूँछा। परन्तु उत्तर कुछ नहीं। इसी प्रकार बराबर पूँछने पर भी लक्ष्मण ने कुछ ठीक उत्तर नहीं दिया। तब सीता जी ने कहाः—

सीता—वत्स! तुम इस प्रकार घवड़ाओ मत, गङ्गा के उस पार ले चल कर मुझे महर्षियों का दर्शन करा दो, जिससे मैं ये वस्त्र आभूषण आदि उनको दे दूँ। पुनः वहाँ एक रात रह कर हम दोनों अयोध्या लौट चलेंगे। हमारा चित्त भी रामचन्द्र जी को देखने के लिये व्याकुल हो रहा है।

लक्ष्मण उसी अवस्था में एक नाव लाये। सीता जी नाव पर चढ़ीं। इन लोगों के गङ्गा के उस पार पहुँचते ही लक्ष्मण की रही सही धीरता भी नष्ट हो गयी। वे बालकों के समान चिल्ला चिल्ला कर रोते हुए जानकी के पैरों पर गिर गये और कहने लगेः—

लक्ष्मण—इसके पहले ही मेरी मृत्यु क्यों नहीं हुई? देवि! तुम मुझे क्षमा करना। इस लोक-निन्दित

कार्य में नियुक्त होना मेरे लिये उचित नहीं था। तुम इसमें मेरा अपराध न समझना।

लक्ष्मण को इस प्रकार व्याकुल देख सीता अत्यन्त व्याकुल हो गयी। उन्होंने कहा :-

सीता-वत्स! मैं कुछ भी नहीं समझती हूँ। तुम स्पष्ट कहो बात क्या है। महाराज तो प्रसन्न हैं? क्या उन्हींने मुझको कुछ अशुभ बात कहने की आज्ञा दी है। अब तुम विलम्ब मत करो, साफ़ साफ़ कहो। अनेक प्रकार की भावनाओं से हमारा हृदय चञ्चल हो रहा।

लक्ष्मण-देवि! राक्षस-गृह में वास के कारण अपने दूतों से आपका लोकापवाद सुन कर महाराज बहुत ही दुःखित हुए हैं। उन्होंने गङ्गातीर के आश्रमों में तुमको छोड़ आने की आज्ञा दी है। यद्यपि तुम मेरे सामने ही निर्दोष सिद्ध हो चुकी हो, तथापि कलङ्क भय से उन्होंने तुम्हारा त्याग किया है। तुम्हारे चरित्र के विषय में रामचन्द्र जी को कुछ भी सन्देह नहीं है। वहाँ से थोड़ी दूर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है, वे महाराज दशरथ के मित्र हैं। उन्हींके आश्रम में तुम रहना। महाराज ने मुझको ही ऐसा निन्दित कर्म करने के लिये आज्ञा दी है। यदि इससे पहले ही मेरी मृत्यु हो

जाती तो ऐसा कठोर समय देखने का अवसर मुझे नहीं मिलता। देवि! मैं अपने बड़े भाई के अधीन हूँ; अतएव इसमें मेरा अपराध कुछ भी नहीं है।

इतना कहते कहते लक्ष्मण का गला भर आया, वे फूट फूट कर रोने लगे :-

लक्ष्मण की बातें सुन कर, जनक-नन्दिनी सन्न हो गयीं। तदनन्तर वे मूर्च्छित हो कर गिर पड़ीं। पुनः सचेत होने पर वे डबडबायी आँखों से दीनता पूर्वक कहने लगीं :-

सीता-लक्ष्मण! दुःख भोगने के लिये ही मेरा जन्म हुआ है। मेरे भाग्य में केवल दुःख ही विधाता ने लिखा है। अथवा इसमें विधाता का क्या दोष है। मैंने पूर्व जन्म में अनेक पाप किये थे, अनेक पतिव्रता स्त्रियों का पति से वियोग कराया था, इसी कारण निष्पाप और शुद्ध चरित्र होने पर भी पति ने मेरा परित्याग किया है। हाय! पहले पति के साथ रहने पर भी मुझे वनवास के अनेक कष्ट भोगने पड़े थे, अब की बार अकेले मैं उन दुःखों को कैसे सह सकती हूँ। जो विपत्ति मुझ पर पड़ी है वह मैं किससे कहूँगी। यदि महर्षिगण, मुझसे परित्याग का कारण पूँछेंगे, तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगी? वे मुझको निःसन्देह पापिनी समझेंगे। हाय! मेरे गर्भ में रामचन्द्र-कुलाङ्कुर

विद्यमान है। यदि उसके नष्ट होने का कोई डर न होता, तो मैं तुम्हारे सामने ही सुख से मर जाती। लक्ष्मण! तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है। तुमने तो अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन किया है। इस कलङ्किनी को वन में छोड़ कर, तुम अयोध्या चले जाओ। वहाँ जा कर सब सासों से भक्ति पूर्वक मेरा प्रणाम कहना। तदनन्तर धर्मात्मा महाराज से कुशल समाचार पूँछ कर कहना—"मेरी श्रद्धा और आपके चरणों में मेरी दृढ़ भक्ति आपको मालूम है और आपने केवल लोकापवाद के भय ही से मेरा अपमान किया है। यह मुझे भी मालूम है। आप ही हमारे अवलम्ब हैं, जिससे आपका कलङ्क दूर हो, वहीं करना मेरा कर्त्तव्य है"। लक्ष्मण और भी कर्त्तव्य-परायण और धर्मात्मा महाराज से कहना, —"आप अपने भाइयों को जिस दृष्टि से देखते हैं, उसी दृष्टि से प्रजा को भी देखें। यही आपका परम धर्म है। इससे आपका यश बढ़ेगा। महाराज! मेरे प्राण भले ही चले जाँय, इसका दुःख मुझे कुछ भी नहीं हैं। परन्तु मैं अनुरोध करती हूँ कि आप ऐसा करें जिससे प्रजा प्रसन्न हो, आपका कलङ्क दूर हो।" पति ही स्त्रियों के परम देवता, गुरु, बन्धु और रक्षक हैं। यदि

प्राण देने से भी पति का कल्याण हो तो स्त्रियों को विना सङ्कोच प्राण दे देना ही उचित है। लक्ष्मण इस जन्म में, मैं रामचन्द्र जी की सेवा नहीं कर सकी; अब मैं इसके लिये तपस्या करूँगी कि आगे के जन्म में रामचन्द्र ही मेरे पति हों और उनकी सेवा मैं कर सकूँ। वत्स! लक्ष्मण, यह मेरी प्रार्थना मेरी ओर से तुम रामचन्द्र जी से कहना।

सीता जी ने पुनः रोकर लक्ष्मण से कहा :—

सीता—वत्स! मैं गर्भवती हूँ, मेरे गर्भ के सभी लक्षण प्रकाशित हो गये हैं तुम भी देख लो।

उस समय लक्ष्मण की अवस्था विलक्षण थी। मुँह से शब्द तक नहीं निकलते थे। वे गला फाड़ फाड़ कर रोने लगे। तदनन्तर प्रणाम और प्रदक्षिणा कर के वे सीता से कहने लगे :—

लक्ष्मण—इस जन्म में मैंने आपका रूप कभी नहीं देखा है। केवल प्रणाम करने के समय आपके चरणों के दर्शन अवश्य किये हैं। इस समय आप रामचन्द्र जी के समीप भी नहीं हैं। अतएव मैं आपका दर्शन कैसे कर सकता हूँ।

यह कह कर लक्ष्मण प्रणाम कर के वहाँ से विदा हुए। मुहूर्त्त भर में नौका गङ्गा के इस पार पहुँच गयी। सीता जी जब तक दृष्टि गोचर होती रहीं; तब तक बार बार लक्ष्मण उनको देखते रहे। सीता भी लक्ष्मण को बार बार देखती रहीं।

अनन्तर दूर होने के कारण उनका आपस का दर्शन-सुख भङ्ग हुआ। गर्भवती और एकाकिनी सीता रोने लगीं। उनके रोने से उस वन में सन्नाटा छा गया। हरिण पशु पक्षी आदि सीता को घेर कर बैठ गये।

कतिपय ऋषि-कुमार घूमने के लिये निकले थे। वे सीता का रोदन सुन कर सीता के समीप आये। उन लोगों ने सीता को वनदेवी समझा और जाकर वाल्मीकि से इसका समाचार कहा। ध्यानस्थ होकर महर्षि ने समस्त बातें जान लीं और वे बहुत शीघ्र आकर सीता के समीप उपस्थित हुए। महर्षि वाल्मीकि ने भगवती सीता से कहा:—

वाल्मीकि—बेटी! महाराज दशरथ की पुत्रवधू रामचन्द्र की महारानी, राजर्षि जनक की पुत्री, तुमको यहाँ आने में कोई विघ्न तो नहीं हुआ? तुम्हारा यहाँ का आना योगबल से मैंने जाना है और तुम्हारे यहाँ आने का कारण भी जाना है। तुम्हारा शुद्ध स्वभाव और निष्कलङ्क चरित्र मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। हमारे आश्रम में चल कर रहो। हमारे आश्रम में अनेक तपस्विनी तपस्या करती हैं। वे तुमको कन्या समझ कर, तुम्हारा पालन करेंगी। अपने पिता के घर के समान हमारे आश्रम में चल कर रहो।

महर्षि की बातें सुन कर, जानकी ने भक्तिपूर्वक उनको प्रणाम किया और कहा:—

सीता—तपोधन! आपके आश्रम ही में रहने का मेरा विचार है।

यह कह कर सीता उनके साथ आश्रम में गयीं। वाल्मीकि ने तपस्विनियों के हाथ सीता को सौंप दिया। सीता का परिचय पाकर तपस्विनियों को बड़ा आनन्द हुआ। वे उनका सत्कार करने लगीं। सीता भी उनके सत्कार से प्रसन्न होकर तपस्विनी वेष में रहने लगीं। परन्तु पति के वियोग से जो वेदना, कष्ट और मनस्ताप उनको होता था वह वे ही जानती थीं।

चौदहवाँ अध्याय।

रामचन्द्र जी ने लोकापवाद के भय से यद्यपि सीता को देशनिकाला दिया, तथापि हृदय से उन्होंने सीता का परित्याग नहीं किया। सीता के अलौकिक गुणों के रामचन्द्र वशीभूत थे। सीता की शुद्धता के विषय में रामचन्द्र जी को तिलभर भी सन्देह न था। उनकी पतिपरायणता, सुशीलता सरलता आदि गुणावली का स्मरण कर के रामचन्द्र अत्यन्त दुःखित होते थे। रामचन्द्र जी ने सीता का परित्याग केवल अपने कर्त्तव्य के अनुरोध से किया। रामचन्द्र जी सीता को जैसी पहले समझते थे वह आज भी वैसी ही समझ रहे हैं। सीता के हृदय में रामचन्द्र जी का प्रेम और रामचन्द्र जी के हृदय में सीता का प्रेम अभी भी उसी प्रकार प्रवाहित हो रहा है। जिस दुःख से सीता जी अपने दिन बिता रही हैं, उसी प्रकार रामचन्द्र भी दिन काट रहे हैं। खाना पीना छूट गया, या राज्य के कार्यों में रामचन्द्र उदासीन थे, वे केवल दिन रात सीता के शोक से व्याकुल हो रहे थे। रामचन्द्र जी की ऐसी भयानक दशा देख सभी व्याकुल थे; परन्तु उनको समझाने का साहस किसी को नहीं होता था। महावीर लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी की ऐसी दशा देख कर कहा:—

लक्ष्मण—प्रभो! आपने प्रजा-पालन के वशवर्ती होकर ही ऐसा भयानक काम किया है। आपने राज-धर्म समझ कर सीता का निर्वासन किया है। परन्तु अब आप उस राजधर्म की ओर उपेक्षा क्यों करते हैं? स्त्री, पुत्र, परिवार आदि सभी अनित्य हैं। इनसे एक दिन अवश्य ही वियोग होता है, अतएव आपका इस प्रकार विलाप करना उचित नहीं है। आप जैसे सत्पुरुष ऐसी बातों से दुःखित नहीं होते। आपने जिस कलङ्क को दूर करने के लिये आर्या सीता का परित्याग किया है, वह कलङ्क इस प्रकार दूर नहीं होगा, प्रत्युत्त वह कलङ्क और भी बढ़ेगा। अतएव धीरता से आप अपनी बुद्धि की इस दुर्बलता को हटावें। इस ही से कल्याण है। अब और दुःख आप न उठावें।

लक्ष्मण के समझाने पर रामचन्द्र जी पुनः राज काज करने लगे। परन्तु रामचन्द्र की पहली अवस्था फिर नहीं लौटी। इस समय रामचन्द्र जी के जीवन का उद्देश्य केवल प्रजा पालन ही है। वह अनेक प्रकार के प्रजाओं के हितकर कार्य करने लगे। उनके शासन से प्रजा सुखी और समृद्ध-शालिनी हुई। उनकी प्रजा सदाचारी धर्मात्मा थी, उनके प्रताप से शत्रुवर्ग परास्त होकर नम्र हो गये थे। मित्रवर्ग प्रसन्न और समृद्ध हो गये थे। सीता का परित्याग कर के रामचन्द्र जी ने दूसरा विवाह नहीं किया। यज्ञ करने के समय पतिव्रता

और निष्पाप जानकी की सोने की प्रतिमा को अर्धाङ्गिनी बना कर रामचन्द्र जी ने उनका गौरव बढ़ाया था। इस बात को सुन कर जानकी अत्यन्त प्रसन्न हुई थीं।

जानकी बड़े ही कष्ट से अपने दिन बिताती थीं। उनका वेष तपस्विनियों का सा था। उनका मन सर्वदा रामचन्द्र के चरणों ही में लगा रहता था। वे सूर्य की ओर एकदृष्टि होकर तपस्या करती थीं। लोकापवाद के भय से रामचन्द्र जी ने उनका त्याग किया है इसका दुःख सीता को कुछ भी नहीं था। भगवती सीता का विश्वास था कि जन्मान्तर के पापों का फल वे भोग रही हैं। वे सर्वदा रामचन्द्र की मङ्गल कामना करती थीं।

सीता गर्भवती थीं यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है, दसम मास पूरा होने पर, उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। महर्षि वाल्मीकि इससे बड़े प्रसन्न हुए। संयोगवश शत्रुघ्न भी उस रात को वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे। वह लवण नामक राक्षस को मारने के लिये जा रहे थे। रात्रि हो जाने के कारण वे वहाँ ही ठहर गये। महर्षि वाल्मीकि ने ज्येष्ठ का नाम कुश और छोटे का नाम लव रखा। तपस्वियों की देख रेख में अयोध्या के भावी राजा का लालन पालन होने लगा। शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा के समान वे बढ़ने लगे। उनके देखने वालों को रामचन्द्र का स्मरण हो आता था। यद्यपि वे राज-कुमार तपस्वियों के वेष में रहते थे; तथापि उनकी शिक्षा क्षत्रियोचित ही होती थी।

सीता का उद्धार कर के जब रामचन्द्र जी अयोध्या के राजा हुए, तब अलकात ही में महर्षि वाल्मीकि ने नारद से

सुना था कि रामचन्द्र जी जगत् में सर्वगुणयुक्त सर्वप्रधान राजा हैं, अतएव महर्षि वाल्मीकि ने पवित्र रामचरित्र को छन्दोवद्ध बनाया था। उसी महाकाव्य रामायण की शिक्षा महर्षि ने अपने प्रिय शिष्य लव कुश को दी थी। एक दिन ऋषि मण्डल बैठा था, महर्षि की आज्ञा से लव कुश रामायण को राग रागिनी में गाने लगे। वहाँ बैठे हुए महर्षियों को बड़ा ही आनन्द हुआ। उनके पास जो उत्तम और प्रिय वस्तु थी, वही उन लोगों ने लव कुश को दे दी। जिसके पास कुछ नहीं था, उसने स्वस्ति (श्रीरस्तु) (दीर्घायुष्यमस्तु) आदि आशीर्वाद दे कर, अपनी प्रसन्नता प्रकट की। एकत्रित ऋषि-मण्डली वाल्मीकि रचित रामायण का गान लव कुश के कोमल कण्ठ से सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुई।

महर्षि वाल्मीकि के प्रयत्न और शिक्षा से लव कुश शिक्षित हुए। आज उनकी बारह वर्ष की अवस्था है। महाराज रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ में शिष्यों के साथ आने के लिये महर्षि वाल्मीकि के पास निमंत्रण आया है। महर्षि वाल्मीकि भी अपने शिष्य और कुमार लव कुश के साथ यथा समय वहाँ उपस्थित हुए। महर्षि ने लव कुश को अपने समीप बुला कर, कहाः-

वाल्मीकि-वत्स! इस पवित्र क्षेत्र में, ब्राह्मणों के समूह में, राजमार्ग में, अतिथि राजाओं के घर में, राजद्वार में, यज्ञस्थान में और विशेषतः यज्ञरत महर्षियों के निकट समस्त रामायण का गान करो। यदि महाराज सुनने के लिये महर्षियों के साथ तुम लोगों को भी बुलावें, तो चले जाना। जैसा मैंने पहले

बताया है, उसी प्रकार बीस सर्ग प्रतिदिन पाठ करना। कोई कितना ही धन दे; परन्तु मत लेना। जो आश्रम में रहने वाले तथा फल मूल खाने वाले हैं, उनको धन से काम ही क्या है? यदि राम तुम लोगों से पूँछें कि तुम किसके पुत्र हो, तो कह देना कि हम वाल्मीकि के शिष्य हैं। वह तुम्हारी वीणा है, इसीसे तान लय के साथ गाना। देखो राजा धर्मतः सभी के पिता हैं, उनका किसी प्रकार तिरस्कार मत करना।

लव और कुश वाल्मीकि के इस उपदेश को सुन कर, मुनि बालकों के समान कपड़े पहन कर, गान करते हुए चले। जो कोई उनका गाना सुनता था वह मुग्ध हो जाता था। राम के समान उनका रूप देख कर और उनका अलौकिक कण्ठस्वर सुन कर, सभी विस्मित हो जाते थे। उनके पीछे गाना सुनने के लिये भीड़ लगी हुई थी। उनके गाने का समाचार रामचन्द्र जी के यहाँ पहुँचा। उन्होंने शीघ्र ही उन मुनि-बालकों को बुलाया और काव्य बनाने वाले का परिचय पूँछा। कुश लव ने भी उचित उत्तर दिया। तदनन्तर महाराज की आज्ञा पाकर वे गाने लगे। गाना सुन कर सभा चित्र-लिखित के समान प्रतीत होने लगी। उन ऋषि-कुमारों को देख रामचन्द्र के हृदय में एक विलक्षण भाव उत्पन्न हो रहा था। उनका सुकोमल शरीर और अङ्ग प्रत्यङ्ग देख कर, रामचन्द्र व्याकुल हो गये। उनको सीता का स्मरण हो आया। रामचन्द्र ने

समझ लिया कि ये सीता ही के पुत्र हैं। उस समय रामचन्द्र

की अवस्था देखते ही बनती थी। वह सीता के पूर्व वृत्तान्तों का स्मरण कर के रोने लगे। रामचन्द्र जी की आज्ञा से सभा भङ्ग हुई। उन बालकों की आकृति रामचन्द्र के समान देख कर, लोग चाकित होते थे।

लव कुश इसी प्रकार प्रतिदिन रामायण गान करते थे। महाराज रामचन्द्र ने अट्ठारह हज़ार स्वर्ण मुद्रा उन लोगों को देने की आज्ञा दी; परन्तु बालकों ने नहीं लिये। उन्होंने कहा:—

लवकुश—महाराज! हम लोग वनवासी हैं। फल मूल खाकर हम लोग दिन विताते हैं। हम लोगों को धन की आवश्यकता नहीं हैं।

इससे रामचन्द्र को और भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने उनका परिचय पूँछा; परन्तु उन लोगों ने "वाल्मीकि के शिष्य हैं" इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा। रामचन्द्र जी ने तो पहले ही ताड़ लिया था कि ये सीता के पुत्र हैं। कौशल्या आदि वृद्धा महारानियों तथा भरत लक्ष्मण आदि की भी ऐसी ही धारणा थी। रामचन्द्र जी ने, महर्षि वाल्मीकि के बुलाने के लिये दूत भेजा और कहा:—

राम–तुम लोग मेरी ओर से वाल्मीकि से जाकर कहो कि यदि जानकी सच्चरित्रा हो, उनमें किसी प्रकार का पाप न हो, तो महर्षि की आज्ञा से अपनी शुद्धि सब पर प्रकट करें। हमारा जो कलङ्क फैला हुआ है, उसे धोने के लिये कल प्रातःकाल सभा में आकर शपथ लें।

दूतों ने रामचन्द्र का सन्देसा महर्षि से कहा। उन्होंने कहा :-

वाल्मीकि-दूतगण ! रामचन्द्र की जो इच्छा है वही हो, स्त्रियों के पति ही देवता हैं अतएव जो वे कहते हैं वही होना चाहिये।

दूतों से वाल्मीकि का आशय जान कर, रामचन्द्र जी प्रसन्न हुए। दूसरे दिन सभा में महर्षियों, राजाओं और प्रजा को बुलाने का प्रबन्ध करने की, उन्होंने आज्ञा दी।

प्रातःकाल हुआ, आज सब के सामने निर्वासिता महारानी सीता अपनी शुद्धता के लिये शपथ लेंगी, इसकी सूचना पाकर सभी उपस्थित हुए। महर्षि राजा आदि अपने अपने स्थान पर बैठे हैं। कोई रामचन्द्र को दोष दे रहे हैं, कोई इसका उत्तर देता है, कोई भगवती सीता का गुणगान कर रहा है। इसी समय महर्षि वाल्मीकि के साथ मलिन वेषा जानकी धीरे धीरे सभा में उपस्थित हुईं। जानकी के आते ही सभा में सन्नाटा छा गया, सभी सीता की ओर देखने लगे। यद्यपि सीता के वस्त्र मलिन थे, तथापि उनके मुख-मण्डल से स्वर्गीय पवित्र ज्योति निकल रहीं थी। यद्यपि उनका शरीर कृश था, तथापि उनकी मानसिक दृढ़ता अलौकिक थी। चारों ओर से धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी। महर्षि वाल्मीकि जानकी को साथ लेकर सभा के बीच में खड़े हुए और रामचन्द्र से कहने लगे :-

वाल्मीकि—राजन् ! ये ही तुम्हारी पतिव्रता धर्मचारिणी सीता हैं; जिन्हें आपने लोकापवाद के भय से परित्याग किया है। आप आज्ञा दें, यह

आप लोगों को अपनी शुद्धता का विश्वास दिलावेगी । कुश और लव ये दोनों जानकी के पुत्र हैं । मैं सत्य कहता हूँ ये रामचन्द्र के औरस पुत्र हैं । हमने कभी झूँठ बोला है यह हमको स्मरण नहीं हैं । यदि जानकी के चरित्र में अणुमात्र भी कलङ्क हो, तो हमारी तपस्या निष्फल हो । मैं सीता को सर्वतः शुद्ध समझता हूँ । इस समय यह पतिपरायणा अपने चरित्र की शुद्धता प्रकाशित करेगी । इनकी शुद्धता का मैं साक्षी हूँ ।

वाल्मीकि की बातों को सुन रामचन्द्र ने कहा :-

रामचन्द्र—भगवन् ! यद्यपि आपके विश्वसनीय वचनों से सीता की शुद्धता प्रकाशित हुई ; तथापि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही हो । पहले लङ्का में देवताओं के सामने सीता की परीक्षा हुई थी । अतएव मैं इनको अपने घर लाया था । परन्तु लोकापवाद की भयानकता मैं जानता हूँ । अतएव इनका मैंने परित्याग किया है । यद्यपि मैं इनको शुद्ध जानता हूँ ; तथापि लोकापवाद के भय ही से इनका मैंने परित्याग किया है । अतएव आप मेरी रक्षा करें, ये यमज कुश लव हमारे ही पुत्र हैं, यह भी मैं जानता हूँ । अब शुद्धा सीता पर हमारी पहले की सी प्रीति पुनः हो ।

सभा निस्तब्ध थी, सभी उत्सुकता पूर्वक सीता की ओर देखते थे। सीता हाथ जोड़ कर और नीचे मुँह कर के कहने लगी:—

सीता—यदि मैंने राम को छोड़ कर, मन से भी कभी अन्य पुरुष की चिन्ता न की हो, तो इस मेरे पुण्य से भगवती पृथिवी फट जाय, मैं उसमें प्रवेश करूँगी। यदि मैंने मन वच शरीर से रामचन्द्र की पूजा की हो, तो इस मेरे पुण्य से भगवती पृथिवी फट जाय, मैं उसमें प्रवेश करूँगी। राम के अतिरिक्त यदि मैं और किसी को न जानती होऊँ; तो मेरे इस सत्य से पृथिवी विदीर्ण हो जाय मैं उसमें प्रवेश करूँगी।

पृथिवी फट गयी, सहसा उसमें से एक अलौकिक प्रभा-पुञ्ज आविर्भूत हुआ, ये ही भगवती पृथिवी हैं। वे सीता को गोद में लेकर, सहसा वहीं अन्तर्हित हुईं। स्वर्ग में दुन्दुभी बजने लगी, देवता लोग धन्य धन्य कहने लगे। आये हुए ऋषि और राजागण विस्मय के साथ इस अलौकिक घटना को, एक सती शिरोमणि कुल-रमणी-पूज्या विशाल हृदयास्वर्गीय देवी के पातिव्रत्य का अनुपम प्रताप और शक्ति देख अवाक हो गये। इस समय की रामचन्द्र की अवस्था का वर्णन कौन कर सकता है। मातृशून्य कुश लव ने अपने रोने से बालक वृद्ध युवा सभी को रुला दिया।

जगतपूज्य भगवती जनक-नन्दिनी का अद्भुत जीवन समाप्त हुआ; परन्तु उनके अलौकिक पातिव्रत्य का कीर्त्तिस्तम्भ अभी तक विद्यमान है। जिस प्रकार सीता ने अक्षयधाम

प्राप्त किया, उसी प्रकार उनकी कीर्त्ति भी अक्षय्य है। सीता नहीं हैं; परन्तु उनकी पवित्र कीर्त्ति विद्यमान है। भगवती सीता, मातृतुल्या जानकी ने जिस कठोर व्रत को धारण किया था, उसका उद्यापन भी उसी कठोरता के साथ किया; परन्तु उस कठोरता में भी स्वर्गीय कोमलता विद्यमान है। जिस अलौकिक रीति से जानकी ने अपने जीवन को प्रारम्भ किया था, उसी अलौकिकता के साथ उन्होंने उसे समाप्त किया। सीता का जीवन कठोर था; परन्तु नीरस नहीं था, जानकी का जीवन दुःखमय था; परन्तु मानसिक तृप्ति से रीता नहीं था। सीता के अन्तर्द्धान होने पर, रामचन्द्र भी अपने भाइयों के साथ और यहाँ अधिक दिन नहीं रह सके।

॥ इति ॥

शिवराम औषधालय प्रेस इलाहाबाद में मूलचन्द के प्रबन्ध से छपा।